# गद्यादर्श

भूमिका

प्रो. एस. टी. नरसिंहाचारी, एम.ए., पी.एच.डी.
अध्यक्ष - हिन्दी विभाग - श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय

प्रकाशक
मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद्
बेंगलूर

# अपनी बात

हिन्दी के उच्च कोटि के लेखकों की रचनाओं का यह आदर्श गद्य संग्रह आपके सम्मुख है। हिन्दी में असंख्य गद्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं, किन्तु उनमें ऐसे संग्रह बहुत ही कम हैं जो विद्यार्थियों के स्तर, रुचि आदि का ख्याल करके वैज्ञानिक ढंग से तैयार किये गये हों। हमारा यह विनम्र निवेदन है कि मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद् की साहित्यिक सलाहकार समिति द्वारा संपादित यह गद्य संग्रह सभी दृष्टियों से एक आदर्श संग्रह है। हम आशा करते हैं कि शिक्षक, आलोचक तथा विद्यार्थी इसका स्वागत करेंगे।

गत ३५ वर्षों से हिन्दी प्रचार कार्य में निरत मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद् ने अपनी प्रारंभिक परीक्षाओं के लिए करीब ३० पुस्तकें प्रकाशित की हैं। अब उसकी उच्च परीक्षाओं के लिए भी पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित करने की योजना के अंतर्गत यह 'गद्यादर्श' प्रथम प्रयास है।

डा. एस. टी. नरसिंहाचारी जी ने इस संग्रह की भूमिका लिखकर इसमें चार चांद लगाये हैं। विद्वान लेखक ने अपनी इस भूमिका में हिन्दी गद्य का प्रारंभिक रूप, इतिहास तथा निबंध, नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी आदि गद्य विधाओं के विकास के चरणों का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया है। डा. नरसिंहाचारी जी के प्रति सलाहकार समिति अपना आभार व्यक्त करती है।

हम उन लेखकों के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त करना चाहते हैं जिन्होंने इस संग्रह में अपनी रचनाएँ सम्मिलित करने के लिए अपनी अनुमति प्रदान की है।

—सलाहकार समिति
मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद्

# अनुक्रमणिका

# भूमिका

हिन्दी गद्य का सम्यक विकास विक्रम संवत की बीसवीं शताब्दी से ही प्रारंभ हुआ माना जा सकता है। हिन्दी-साहित्य के इतिहासों में इस काल को आधुनिक काल कहा गया है। आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य का सर्वथा अभाव तो नहीं था लेकिन वह बहुत कम मात्रा तथा अविकसित दशा में प्राप्त होता है। आधुनिक काल से पूर्व प्राप्त होने वाला गद्य दो रूपों का दिखाई देता है-(१) ब्रजभाषा गद्य एवं (२) खड़ी बोली गद्य।

ब्रजभाषा गद्य की सर्वप्रभम रचना गोरखनाथ कृत 'गोरखसार' बताई जाती है लेकिन अनेक विद्वान इस रचना की प्रामाणिकता में सन्देह प्रकट करने लगे हैं। ब्रजभाषा गद्य में वल्लभ सम्प्रदाय के अनेक भक्तों ने रचनाएँ लिखीं। इनमें-से गोस्वामी गोकुलनाथ जी की 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता तथा दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गोस्वामी हरिराय जी ने भी कुछ वार्ताएँ लिखीं। महत्वपूर्ण काव्य ग्रंथों की टीकाएँ भी ब्रजभाषा गद्य में लिखी गई। ऐसे टीकाकारों में हितचौरासी के टीकाकार प्रेमदास, भक्तमाल के टीकाकार प्रियदास, केशव की कविप्रिया एवं बिहारी सतसई के टीकाकार सूरतिमिश्र आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। इन टीकाओं का गद्य बहुत ही अव्यवस्थित है। संस्कृत के पुराणों, कथाग्रंथों तथा शास्त्रीय ग्रंथों के ब्रजभाषा गद्य में अनुवाद भी किए गए। ऐसे ग्रंथों में दामोदर दास का मार्कण्डेयपुराण, सूरतिमिश्र की वैतालपचीसी एवं चन्दसैन

मिश्र का माधव निदान उल्लेखनीय हैं। इन अनुवाद ग्रंथों की भाषा-शैली टीकाओं की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ एवं प्रवाहपूर्ण है।

खड़ीबोली गद्य की प्राचीनतम रचना अकबर के समय की कवि गंग की 'चंद छंदबरनन की महिमा' प्राप्त होती है। यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि दक्षिण भारत में दखिनी का गद्य प्रारंभ पन्द्रहवीं शताब्दी में ही हो चुका था। ख्वाजा बंदे नवाज नेसूदराज (१३४६–१४२३ ई.) की 'मीराजुल आशकीन' दखिनी की पहली रचना मानी जाती है। दक्षिण के साहित्यकारों ने अपनी भाषा को 'हिन्दी' 'हिन्दवी', 'दखिनी', 'देहलवी', 'ज़बान हिन्दुस्तान' आदि अनेक नामों से पुकारा है। इसे खड़ीबोली का प्रारंभिक रूप माना जा सकता है। दक्षिण के गद्यकारों में गेसूदराज, शाह मीराँजी, शाह बुरहानुद्दीन जानम एवं मुल्लावजही आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। दक्षिण के इन गद्य लेखकों का खड़ीबोली गद्य के विकास में योगदान है, अभी उसका समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है। उत्तरी भारत में गंग की रचना के पश्चात् १८ वीं शताब्दी की दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं—रामप्रसाद निरंजनी की 'भाषा योगवशिष्ट' तथा दौलतराम की 'पद्मपुराण'। इनमें से प्रथम ग्रंथ की भाषा अधिक साहित्यिक एवं प्रौढ़ है।

खड़ीबोली गद्य के विकास की नींव डालने का कार्य सदासुख लाल, सदलमिश्र, इंशा अल्लाखाँ एवं लल्लूलाल ने किया। सदासुख लाल ने सुख सागर में पंडिताऊपन लिए हुए भाषा का रूप प्रस्तुत किया। सदलमिश्र के नासिकेतोपाख्यान की भाषा अधिक व्यवस्थित एवं चुस्त है। 'इंशा' की रानी केतकी की कहानी में न संस्कृत भाषा का प्रभाव है और न अरबी-फारसी के अनमेल शब्दों का प्रयोग। फिर भी उसका वाक्य विन्यास फारसी से प्रभावित है। लल्लूलाल ने प्रेमसागर के अतिरिक्त अन्य कई ग्रंथ भी गद्य में लिखे। प्रेमसागर की भाषा में माधुर्य एवं सरसता है।

खड़ीबोली गद्य के विकास में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द एवं राजा लक्ष्मण सिंह ने भी महत्वपूर्ण योग दिया। ईसाई प्रचारकों एवं आर्य समाज

की स्थापना ने भी खड़ीबोली गद्य के प्रचार में सहयोग दिया। तत्पश्चात् भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी गद्य को नवीन रूप प्रदान किया। उन्होंने एक ओर हिन्दी गद्य का परिमार्जित एवं परिष्कृत रूप प्रस्तुत किया तो दूसरी ओर गद्य की विभिन्न विधाओं यथा—निबन्ध, नाटक, समालोचना, कहानी, उपन्यास आदि का प्रवर्तन किया। इस युग में प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, किशोरीलाल गोस्वामी, राधाचरण गोस्वामी, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, आदि अनेक प्रसिद्ध लेखक हुए जिन्होंने विविध विषयों पर अनेकों गद्य-रूपों में रचनाएँ प्रस्तुत कीं। गद्य के क्षेत्र में नयी गति महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के प्रयत्नों से आई। उन्होंने सरस्वती पत्रिका के माध्यम खड़ीबोली की प्रतिष्ठा के आंदोलन को दृढ़ता प्रदान की। उन्होंने अपने युग के साहित्यकारों की भाषा-शैली सम्बन्धी त्रुटियों की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया। गद्य शैली के परिष्कार के अतिरिक्त उन्होंने गद्य के विविध रूपों के विकास के लिए भी अपने युग के साहित्यकारों को प्रोत्साहित किया। द्विवेदी युग में आकर ही हिन्दी गद्य को प्रौढ़ता प्राप्त हुई और इसका प्रौढ़तम रूप परवर्ती लेखकों यथा पं. रामचन्द्र शुक्ल, प्रसाद, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नगेन्द्र आदि की रचनाओं में देखा जा सकता है।

गद्य के विविध रूपों में निबन्ध, नाटक, उपन्यास, कहानी, समीक्षा आदि आते हैं। नीचे संक्षेप में इन सबके विकास पर भी विचार कर लेना समीचीन होगा।

### हिन्दी निबन्ध का विकास

हिन्दी निबन्ध का प्रारंभ एवं विकास भारतेन्दु युग में हुआ। यद्यपि भारतेन्दु से पूर्व राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के निबन्ध 'राजा भोज का सपना' को हिन्दी के प्रथम निबन्ध के रूप में स्वीकार किया जा सकता है लेकिन इसे एक स्फुट प्रयत्न ही कहा जायेगा क्योंकि भारतेन्दु युग के प्रारंभ होने तक निबन्धों की कोई सुव्यवस्थित परंपरा दिखाई नहीं देती।

मोटे रूप से हिन्दी-निबन्ध के विकास को तीन युगों में विभक्त किया जा सकता है– (१) शुक्ल पूर्व युग, (२) शुक्ल युग एवं (३) शुक्लोत्तर युग। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के युग में हिन्दी निबन्ध अपनी प्रौढ़ता को पहुंचा। उनसे पूर्व हिन्दी निबन्ध ने भारतेन्दु एवं द्विवेदी युगों में विकास के दो चरणों को पार किया था। भारतेन्दु युग के निबन्धकारों में भारतेन्दु के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, प्रेमघन आदि प्रसिद्ध हैं। इस युग के निबन्धों में विषय क्षेत्र की व्यापकता एवं विविधता दिखाई देती है। प्रत्येक निबन्धकार की अपनी निजी शैली है। द्विवेदी युग के प्रमुख निबन्धकारों में स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त माधवप्रसाद मिश्र, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सरदार पूर्णसिंह एवं डा. श्यामसुन्दरदास प्रमुख हैं। द्विवेदी जी के निबन्धों का आदर्श बेकन था जिसके निबन्धों का उन्होंने 'बेकन-विचार-रत्नावली' नाम से अनुवाद किया। निबन्धों में वे विचार को महत्व देते थे। स्वतंत्र चिन्तन, स्पष्ट अभिव्यक्ति एवं अध्ययन की गंभीरता इस युग के सभी निबन्धकारों की सामान्य विशेषता मानी जा सकती है।

शुक्ल जी ने 'चिंतामणि' के निबन्धों के द्वारा नये विचार, नयी अनुभूति एवं नयी शैली पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की। उन्होंने मनोविकार जैसे सूक्ष्म विषय को लेकर चिन्तन की मौलिकता, विवेचन की गंभीरता, विश्लेषण की सूक्ष्मता एवं शैली की प्रौढ़ता का आदर्श प्रस्तुत किया। व्यक्ति एवं विषय का सुन्दर समन्वय उनके निबन्धों की एक बहुत बड़ी विशेषता है। डा. गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, रायकृष्णदास, राहुल आदि इस युग के कुछ अन्य प्रमुख निबन्धकार हैं। इस युग में आखेट विषयक निबन्धों के क्षेत्र में पं. श्रीराम शर्मा का स्थान अद्वितीय है। इनके निबन्ध शिकार, प्राणों का सौदा एवं बोलती प्रतिमा आदि ग्रंथों में संग्रहीत हैं।

शुक्लोत्तर युग में सैकडों निबन्धकार हुए हैं और उनकी संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। इस युग के प्रसिद्ध निबन्धकारों में आचार्य हजारीप्रसाद

द्विवेदी, पं. नंददुलारे वाजपेयी, डा. नगेन्द्र, डा. रामविलास शर्मा, डा. प्रभाकर माचवे, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, वासुदेवशरण अग्रवाल, दिनकर, श्री जैनेन्द्र आदि उल्लेखनीय हैं। ये आज के युग के चोटी के निबन्धकार हैं। संस्मरणात्मक निवन्ध लिखने में महादेवी वर्मा एवं रामवृक्ष बेनीपुरी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हास्य-व्यंग्य पूर्ण निबन्धों के लिए गोपाल प्रसाद व्यास, अन्नपूर्णानंद, परसाई के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रभाकर माचवे ने रोचक विषयों को लेकर निबन्ध लिखे हैं। हिन्दी में साहित्यिक विषयों के अतिरिक्त अन्य विषयों पर निबन्ध लिखनेवालों की संख्या भी निरन्तर बढ़ रही है। हिन्दी निबन्ध साहित्य थोड़े से समय में ही पर्याप्त उन्नति कर ली है और उसमें निरन्तर विकास होता जा रहा है।

**हिन्दी नाटक का विकास**

हिन्दी नाटक के स्वरूप का समुचित विकास भी भारतेन्दु युग में ही हुआ। यद्यपि भारतेन्दु से पूर्व पद्यबद्ध नाटकों की एक पुष्ट परम्परा मिलती है जिसके अन्तर्गत हृदयराम कृत हनुमान नाटक, प्राणचन्द चौहान कृत रामायण महानाटक, लछीराम कृत करुणाभरण नाटक, महाराज विश्वनाथ सिंह कृत रघुनंदन नाटक आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी जन नाट्य शैली के नाटक थे और इनमें से कुछ के अभिनीत किए जाने के उल्लेख उन्हीं में प्राप्त होते हैं। जैन कवियों के रास ग्रंथों की भी एक परम्परा प्राप्त होती है जिसमें अनेक रास ग्रंथों के अभिनय किए जाने के उल्लेख हैं। अपभ्रंश के काल से ही पद्यबद्ध नाटकों की परम्परा प्रारंभ हो गई थी। लेकिन आधुनिक युग में गद्य-पद्य या केवल गद्य में लिखी रचना को ही नाटक माना जाने लगा है, इसलिए पद्यबद्ध नाटकों को नाम के नाटक कहकर छोड़ देने की प्रवृत्ति चल पड़ी है। अस्तु।

भारतेन्दु ने अपने पिता गिरधरदास के नाटक 'नहुष' को हिन्दी का प्रथम नाटक बताया है। कुछ विद्वान भारतेन्दु के 'विद्यासुन्दर' को प्रथम नाटक मानते हैं। भारतेन्दु ने वदिकी हिंसा हिंसा न भवती, प्रेम योगनी, विषस्य विषमौषधम्, चन्द्रावली, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेर नगरी आदि

अनेक मौलिक नाटक लिखे। उनके अनूदित नाटक भी अनेक हैं। उन्होंने वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर नाटक लिखे। उनके युग के अन्य लेखकों ने भी ऐसे ही विषयों पर नाटकों की रचना की। इस युग के नाटककार का दृष्टिकोण आदर्शवादी या सुधारवादी दिखाई देता है।

प्रसाद जी ने हिन्दी नाटक साहित्य को एक नवीन मोड़ दिया। उनके नाटकों में भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य तत्वों का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। उन्होंने भारत के गौरवमय अतीत को लेकर अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, जनमेजय का नागयज्ञ आदि श्रेष्ठ नाटक लिखे। नारी के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण उनके नाटकों की एक अन्य विशेषता है। प्रसाद जी के कवि रूप की छाप भी उनके नाटकों पर स्पष्ट दिखाई देती है। उग्र, गोविन्द वल्लभ पंत, मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द एवं 'बेताव' इस युग के कुछ अन्य नाटककार हैं।

प्रसाद के पश्चात् ऐतिहासिक नाटक लिखनेवालों में हरिकृष्ण प्रेमी, सेठ गोविन्ददास, उदय शंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि प्रमुख हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने समस्याप्रधान नाटकों का हिन्दी में सूत्रपात किया। उनके सन्यासी, राक्षस का मन्दिर, सिन्दूर की होली, मुक्ति का रहस्य आदि प्रमुख समस्या नाटक हैं। आधुनिक नाटककारों में उपेन्द्रनाथ का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की समस्याओंका चित्रण यथार्थ रूप में किया है और उसके मूल में सुधार की भावना भी निहित है। स्वर्ग की झलक, कैद, उडान, छठा बेटा, बंद गली आदि उनके कुछ प्रमुख नाटक हैं। आज के कुछ अन्य नाटककारों में मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायणलाल, शंभूनाथ सिंह, रघुवीरशरण मिश्र, जयनाथ नलिन आदि प्रसिद्ध हैं।

### हिन्दी एकांकी का विकास

हिन्दी नाटकों के साथ ही हिन्दी एकांकी का भी विकास होता रहा है। भारतेन्दु युग में हिन्दी एकांकी लेखन का प्रारंभ हुआ। स्वयं भारतेन्दु के

'अंधेर नगरी' एवं 'विषस्य विषमौषधम्' आदि में एकांकी के प्राचीन लक्षणों का निर्वाह हुआ है। भारतेन्दु युग के अनेक लेखकों ने प्रहसनों की रचना की जो लक्षणों की दृष्टि से एकांकी ही कहे जा सकते हैं।

आधुनिक एकांकी का विकास प्रसाद जी के नाटक क्षेत्र में प्रवेश के बाद प्रारंभ हुआ। प्रसाद जी का 'एक घूंट' आधुनिक ढंग का प्रथम एकांकी माना जा सकता है। आधुनिक एकांकी पाश्चात्य शैली से काफी प्रभावित दिखाई देते हैं। इस परंपरा को आगे बढ़ाने में डा. रामकुमार वर्मा ने महत्वपूर्ण योग दिया है। उनके 'पृथ्वीराज की आँखें' 'रेशमी टाई' 'चारुमित्रा' 'इन्द्रधनुष' 'रिमझिम' आदि अनेकों एकांकी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। उनके एकांकियों के विषय ऐतिहासिक एवं सामाजिक हैं। वर्मा जी के समय के अन्य प्रसिद्ध एकांकिकारों में लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास, जगदीशचन्द्र माथुर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नाटकों के समान ही अश्क जी को सामाजिक एकांकी लिखने में भी बहुत सफलता मिली है। उन्होंने समाज की रूढ़ियों, परम्पराओं, तथा कमज़ोरियों पर व्यंग्यात्मक दृष्टि से प्रकाश डाला है। लक्ष्मी का स्वागत, स्वर्ग की झलक, जोंक, सूखी डाली, अंधी गली आदि इनके कुछ बहु-चर्चित एकांकी हैं। हिन्दी में एकांकीकारों की संख्या इतनी अधिक है कि सबके नाम गिनना भी यहाँ संभव नहीं है। प्रायः सभी नाटककार एकांकीकार भी दिखाई देते हैं।

ध्वनिरूपक या रेडियो रूपक एकांकी का एक नवीन प्रकार है। रेडियो के प्रचार-प्रसार ने इस प्रकार के एकांकियों के महत्व को काफी बढ़ा दिया है। प्रायः सभी प्रमुख एकांकीकारों ने ध्वनिरूपक भी लिखें हैं। इस क्षेत्र के कुछ नवीन साहित्यकार ये हैं–विष्णु प्रभाकर, प्रभाकर माचवे, स्वदेश कुमार, गोपाल शर्मा, राजाराम शास्त्री, सत्यप्रकाश संगर, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव, एवं रेवतीसरन शर्मा। आज एकांकी का बहुत विकास हो रहा है। ध्वनि रूपक, संगीत रूपक, रेडियो प्रहसन, मानोलाग आदि एकांकी के नवीन प्रकारों का आज पर्याप्त विकास हो रहा है।

**हिन्दी उपन्यास का विकास**

शुक्ल जी ने लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरु' को हिन्दी का पहला उपन्यास माना है। इसकी रचना सं. १९३९ वि. में हुई थी। तब से लेकर आज तक हिन्दी उपन्यास ने विकास की अनेक मंजिलें पार कर ली है। मोटे रूप से हिन्दी उपन्यास के विकास को तीन युगों में विभक्त किया जा सकता है। (१) प्रेमचन्द्र-पूर्व युग, (२) प्रेमचन्द्र युग तथा, (३) प्रेमचन्दोत्तर युग।

प्रेमचन्द से पूर्व उपन्यास लिखनेवालों में बालकृष्ण भट्ट, किशोरीदास गोस्वामी, हरिऔध, देवकीनंदन खत्री एवं गोपालराम गहमरी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। किशोरीदास, भट्ट एवं हरिऔध ने सामाजिक समस्याओं को आधार बनाकर उपन्यास लिखे। किशोरीदास ने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना भी की। देवकी नंदन खत्री के चन्द्रकांता, चन्द्रकांता संतति एवं भूतनाथ उस काल में बहुत लोकप्रिय हुए। इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए ही लाखों लोगों ने हिन्दी सीखी। ये तिलस्मी एवं ऐयारी उपन्यास हैं। गोपालराम गहमरी ने जासूसी उपन्यास ही अधिक लिखे।

प्रेमचन्द के उपन्यास क्षेत्र में पदार्पण के बाद हिन्दी उपन्यास प्रौढ़ता को प्राप्त हुआ। प्रेमचन्द के सेवासादन, प्रेमाश्रम, निर्मला, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि एवं गोदान प्रसिद्ध हैं। इन उपन्यासों में उन्होंने सामाजिक समस्याओं का चित्रण करके उनके समाधान की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। औपन्यासिक तत्वों का अपनी कृतियों में सुन्दर निर्वाह करके उन्होंने हिन्दी उपन्यास कला को उसके चरम शिखर पर पहुँचा दिया। प्रेमचन्द आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद के पक्षपाती थे और इसी कारण उनकी कृतियों में युग का सच्चा चित्र प्रस्तुत हो सका है। प्रेमचन्द युग के अन्य उपन्यासकारों में विश्वंभरनाथ कौशिक, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, मोहनलाल महतो, सियारामशरण गुप्त, चंडीप्रसाद 'हृदयेश' उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचन्दोत्तर युग में हमें हिन्दी उपन्यासों में अनेक परंपराएँ चलती हुई दिखाई देती हैं। उनमें से कई का विकास प्रेमचन्द युग में ही हो चुका था। प्रेमचन्द सामाजिक उपन्यासों की आदर्शवादी परंपरा से संबंधित रहे। यथार्थ परक सामाजिक उपन्यास लिखनेवालों में चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र,' निराला, अश्क, अमृतलाल नागर आदि प्रमुख हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में समाज में प्रचलित अनैतिकता, दुराचार, व्यभिचार आदि का खुलकर वर्णन किया है। ऐतिहासिक उपन्यास लिखने वालों में वृंदावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, राहुल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रांगेय राघव आदि प्रसिद्ध हैं। वर्मा जी के झाँसी की रानी, गढ़ कुंडार, विराटा की पद्मिनी, चतुरसेन शास्त्री के वैशाली की नगरवधू, सोमनाथ, वयं रक्षामः; राहुल के सिंह सेनापति, जय यौधेय; द्विवेदीजी के बाण भट्ट की आत्मकथा, चारुचन्द्रलेख तथा रांगेय राघव के मुर्दों का टीला, चीवर एवं अंधेरे के जुगनू आदि हिन्दी के कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं। व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन को लेकर चलने वाले उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा एवं उदयशंकर भट्ट आदि प्रमुख हैं। प्रसाद जी ने तितली एवं कंकाल में नैतिक मूल्यों एवं संबंधों के पतन को दिखाते हुए व्यक्तिवाद का समर्थन किया है। वर्माजी के चित्रलेखा उपन्यास में पाप-पुण्य की नवीन दृष्टि से व्याख्या की गई है। उनके उपन्यासों में प्राचीन जीवन मूल्यों एवं परंपराओं का स्पष्ट विरोध दिखाई देता है। उदयशंकर भट्ट के नये मोड़, लोक परलोक एवं शेष-अशेष आदि उपन्यासों में समाज के निर्माण का प्रयास है जिसमें व्यक्ति का नैतिक, बौद्धिक एवं आर्थिक विकास हो सके।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की परंपरा हिन्दी में काफी पुष्ट दिखाई देती है। जैनेन्द्र को इस कोटि के उपन्यासों का प्रारंभकर्ता माना जा सकता है। उनके परख, सुनीता, कल्याणी, सुखदा आदि अनेक उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उनके सुनीता उपन्यास ने बड़ी हलचल मचाई थी। इन उपन्यासों में विभिन्न पात्रों के मानसिक अंतर्द्वंद्व एवं कुंठाओं का विश्लेषण किया गया है।

इलाचन्द्र जोशी के संन्यासी, जिप्सी, जहाज का पंछी, अज्ञेय के शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप, देवराज का पथ की खोज, धर्मवीर भारती का गुनाहों का देवता आदि इस कोटि के कुछ अन्य प्रमुख उपन्यास हैं। प्रगतिवादी परंपरा के उपन्यासकार मार्क्सवादी जीवन दर्शन से प्रभावित हैं। इस कोटि के उपन्यासों में यशपाल के दिव्या, दादा कामरेड, देश द्रोही, मनुष्य के रूप, झूठा सच, नागार्जुन के बाबा बटेसरनाथ, बलचनमा, नई पौध; रांगेय राघव के सीधा सादा रास्ता एवं आखिरी आवाज आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। किसी क्षेत्र विशेष की रीति-नीति एवं संस्कृति के वर्णन वाले उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास कहा जाता है। ऐसे उपन्यासकारों में नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, अमृतलाल नागर, रांगेयराघव विशेष उल्लेखनीय हैं। नागार्जुन के वरुण के बेटे, नई पोध, रेणु के मैला आंचल, परती परिकथा; नागर का बूंद और समुद्र तथा रांगेय राघव का कब तक पुकारूँ इस वर्ग की कुछ श्रेष्ठ रचनाएँ हैं।

हिन्दी उपन्यासों में सन् १९५० के बाद शैली एवं शिल्प को प्रधानता देते हुए उपन्यास लिखने की परंपरा का विकास हुआ है। धर्मवीर भारती का सूरज का सातवाँ घोड़ा में विभिन्न कहानियों को एकसूत्र में पिरोकर उपन्यास का रूप दिया गया है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के 'सोया हुआ जल' का शिल्प अपने ढंग का अनोखा है। यशपाल के बारह घंटे में केवल बारह घटों की कहानी है। ग्यारह सपनों का देश एवं एक इंच मुस्कान सामूहिक उपन्यास हैं जिन्हें एक से अधिक उपन्यासकारों ने लिखा है। लक्ष्मीकांत वर्मा के खाली कुर्सी की आत्मा, एवं टेरा कोटा; हजारी प्रसाद द्विवेदी के बाण भट्ट की आत्मकथा एवं चारुचन्द्रलेख भी शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। इस विवरण से स्पष्ट है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य विविध दिशाओं में प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है। आज हिन्दी में इतने प्रतिभाशाली उपन्यासकार निरन्तर सृजन में लगे हैं कि उनके एवं उनकी कृतियों के विवरण के लिए एक स्वतंत्र पुस्तक की आवश्यकता होगी।

## हिन्दी कहानी का विकास

हिन्दी में आधुनिक ढंग की कहानियों का प्रकाशन सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन (सन् १९०० ई.) के बाद ही प्रारंभ हुआ। हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी 'इन्दुमती' सन् १९०० ई. में सरस्वती में प्रकाशित हुई। इस प्रकार इन्दूमति के लेखक किशोरीलाल गोस्वामी को हिन्दी का प्रथम कहानीकार माना जा सकता है। प्रसाद जी की 'ग्राम' नामक कहानी सन् १९११ ई. में इन्दु नामक पत्रिका में छपी। गुलेरी जी की 'उसने कहा था' सन् १९१५ ई. में तथा प्रेमचन्द की पंच परमेश्वर सन् १९१६ ई. में प्रकाशित हुईं। सन् १९१० ई. से आज तक के हिन्दी कहानी के विकास को चार युगों में विभाजित किया जा सकता है–(१) प्रसाद युग, (२) प्रेमचन्द युग, (३) प्रगतिवादी युग एवं (४) आधुनिक युग।

प्रसाद युग की कहानियों में भाव एवं शिल्प का विशिष्ट स्थान है। प्रसाद जी की कहानियों के छाया, प्रतिध्वनि, आँधी, आकाशदीप एवं इन्द्रजाल-ये पांच संग्रह प्रकाशित हुए। प्रसाद जी से प्रभावित कहानिकारों में विनोद शंकर व्यास, राय कृष्णदास एवं चंडीप्रसाद हृदयेश आदि प्रमुख है।

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में मुख्य रूप से समाज का ही चित्रण किया है। ग्रामीण जीवन की विविध समस्याओं को यथार्थ रूप में चित्रण करना ही उनका उद्देश्य था। उन्होंने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखीं जो 'मान-सरोवर' में संग्रहीत हैं। इस युग के अन्य कहानीकारों में विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, भगवतीचरण वर्मा, उग्र, चतुरसेन शास्त्री आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचन्द की 'कफन' कहानी में प्रगतिवाद का स्वर स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आया था। सन् १९३३ के बाद मार्क्स एवं फ्राइड से प्रभावित कहानीकारों ने कहानियाँ लिखना प्रारंभ किया। मार्क्स से प्रभावित कहानीकारों में यशपाल, अमृतराय, नागार्जुन, रांगेयराघव आदि उल्लेखनीय हैं। फ्राइड से प्रभावित कहानीकारों में इलाचन्द्र जोशी, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, जैनेन्द्र, अश्क एवं अज्ञेय आदि उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी कहानी साहित्य का आधुनिक युग नई कहानी से संबंध रखता है। इस युग में कहानी की वस्तु एवं शिल्प में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। नई कहानी में पुरानी कहानी की रूपरेखा को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति बढ़ चली है। नई कहानी में किसी अस्थायी मनोदशा, परिस्थिति या वातावरण का चित्रण होता है। प्राचीन कहानियों में समस्या पर बल दिया जाता था लेकिन आजकल अनुभवधर्मा कहानियों पर बल दिया जा रहा है। पुरानी एवं नई कहानी के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि एक बुद्धि के माध्यम से हृदय तक पहुँचती तो दूसरी हृदय के माध्यम से बुद्धि तक। नई कहानी में कथ्य की अपेक्षा टेकनीक को अधिक महत्व दिया जाता है। कुछ प्रमुख नये कहानीकारों एवं उनकी प्रसिद्ध कहानियों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं—कमलेश्वर की कस्बे का आदमी, मोहन राकेश की अपरिचित, मलवे का मालिक, उषा प्रियम्वदा की वापसी, मन्नू भंडारी की यही सच है, निर्मल वर्मा की परिन्दे, भारती की गुलकी बन्नो, रामकुमार की सेलर, ज्ञानरंजन की फेंस के इधर-उधर, शेखर जोशी की बदबू तथा मार्कण्डेय की दाना-भूषा आदि।

हिन्दी कहानी का विकास नई कहानी पर आकर रुक नहीं गया है। इधर नई कहानी के अनेक नवीन प्रकार सामने आ रहे हैं। इनमें से सचेतन कहानी, साहित्यिक कहानी, वैज्ञानिक कहानी, अकहानी, अकथा आदि प्रकार उल्लेखनीय हैं। इनमें से अनेक प्रवृत्तियों का स्वरूप अभी स्पष्ट नहीं हो पाया है। इस सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी कहानी में बड़ी तीव्रता से विकास हो रहा है।

अंत में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि आज हिन्दी गद्य में जितनी साहित्यिक विधाओं एवं शैलियों का प्रयोग हो रहा है उससे हिन्दी गद्य उस ऊँचाई तक पहुँच चुका है कि उसे संसार की किसी भी भाषा के समकक्ष रखा जा सकता है।

डा. एस. टी. नरसिंहाचारी

# आचार्यदेव

मैथिलीशरण गुप्त

मैं जब और कुछ न बन सका तब मैंने कवि बननेकी ठानी। हाय, कहीं सब पोले बाँस वेणु बन सकते!

एक जन, जो गधे पर बैठनेकी भी योग्यता न रखता था, बनानेवालोंके बढ़ावेमें आकर घोड़े पर बैठा। घोड़ा भी ऐसा, जो धरती पर पैर ही न रखना चाहता था। ऐसा आरोही तो उसके लिए अपमानजनक था। परन्तु क्या जानें, घोड़ेको भी विनोद सूझा और वह उसे एक वर्जित स्थानमें दौड़ा। वहाँका प्रहरी सतर्क होकर चिल्लाया—सावधान! परन्तु आरोही सावधान होकर भी क्या करे? तब प्रहरीने शस्त्र सँभालकर कहा—अच्छा, चला आ—ऐसे ही! अब आरोही चिल्लाया—दुहाई आपकी, मैं स्वयं नहीं आ रहा हूँ, यह दुर्मुख मुझे लिये आ रहा है! प्रहरी भी समझ गया और जिसे अनधिकार प्रवेश करनेका दण्ड देने जा रहा था उस भाग्यहीन अथवा भाग्यवानकी उसे उलटी सँभाल करनी पड़ी।

कवि तो बनाये नहीं जाते, परन्तु कोप-भाजन होने योग्य होकर भी मैं पूज्य द्विवदीजी महाराजका अनुग्रह-भाजन हो गया। इससे बढ़कर किसी का क्या सौभाग्य होगा।

उन्चास-पचास वर्ष पहलेकी बात है। मैं कुछ पद्य बनाने लगा था। पंडितजी उन दिनों झाँसीमें ही थे। उनका नाम मैं सुन चुका था और उनकी 'सरस्वती' के दर्शन भी मैंने पा लिये थे। मेरे मनमें प्रश्न उठा – क्या 'सरस्वती' में अन्य कवियोंकी भाँति मेरा नाम नहीं छप सकता? इसका उत्तर अपने ही दीर्घ निःश्वासके रूपमें मुझे मिल जाना चाहिए था, परन्तु लड़कपन अल्हड़ होता है और दुस्साहसी भी।

पिताजीके साकेतवासके पीछे, उनके नाते कृपा बनाये रखनेके प्रार्थी होकर, अपने काकाजीके साथ, हमलोग पहली बार कलक्टर साहबको जुहारने झाँसी गये थे। मेरे जानेका प्रधान उत्साह और ही था। भीतर-भीतर 'सरस्वती' में अपना नाम छपानेका डौल लगानेकी लालसासे और बाहर-बाहर ऐसे महानुभावके दर्शन करनेकी इच्छासे, अपने अग्रजको साथ लेकर मैं पंडितजीके स्थानपर पहुंचा। घर छोटा ही था। द्वारपर बाँसकी सींकों की बनी लिपटी हुई चिक बँधी थी, जिसकी गोटका हरा कपड़ा कुछ फीका पड़ चला था। एक ओर उनके नामकी पट्टी लगी थी। दूसरी ओर भी एक पटली थी। उसमें लिखा था – सवेरे भेंट न होगी। हमलोग इस बातको सुन चुके थे। अतएव, तीसरे पहर गये थे। तब भी वे आफ़िससे नहीं लौटे थे। छोटेसे उसारेमें एक बेंच पड़ी थी। उसीपर हम बैठ गये। भीतर कमरेमें खुली अलमारियोंकी पुस्तकोंकी दूसरी दीवार-सी बनी थी। बाईं ओरके पक्खेसे सटकर एक पलंग पड़ा था। उसपर लपेटे हुए बिछौनेने लोड़का रूप धारण कर रक्खा था। दाईं ओरके पक्खेसे लगी दो तीन कुर्सियाँ पड़ी थीं। बीचके रिक्त स्थानमें पलंगसे कुछ हटकर प्रवेश-द्वारके खुले किवाड़ को छूता हुआ एक छोटासा टेबुल या चेयर डैस्क था। उसके सामने भी एक कुर्सी पड़ी थी। टेबल लिखने-पढ़नेकी सामग्रीसे भरा था, परन्तु सब सामग्री बड़े ढंगसे सजाई गई थी। प्रवेश-द्वारके सामने ही भीतर जाने का द्वार था, उसमेंसे एक मझपौरिया दिखाई देती थी। सारा स्थान बहुत ही परिष्कृत, स्वच्छ और शान्त-कान्त दिखाई पड़ता था। तो भी पंडितजीके आनेका

समय निकट जानकर घरकी परिचारिका हाथमें गमछा लिये उसे कमरेमें इधर-उधर फटकार रही थी। ऐसा जान पड़ता था मानो यह एक विधि है, जिसे आवश्यक हो या न हो, पूरा करना ही चाहिये। ऐसी समझदार और कुशल सेविकाएँ विरली ही होती हैं। बड़ी अपनाहटके साथ उसने हम लोगोंका स्वागत-सत्कार किया। उसकी मृत्यु होनेपर पंडितजीने मुझे यथार्थ ही लिखा था– ऐसा जन अब मिलनेका नहीं।

तनिक देर पीछे उसने एक बार इधर-उधर देखा फिर उसारेसे नीचे उतरकर कुछ दूर तक पंडितजीके आनेका मार्ग भी बुहार दिया। इतना करके मानो वह उस समयके कार्यसे निश्चिन्त हो गई। उसी समय पंडितजी आते हुए दिखाई दिये। व्यक्तियों की विशिष्टता मानो उनके आगे चलती है। हम लोगोंने देखते ही समझ लिया, यही पंडितजी हैं, यद्यपि बिना पगड़ीके मैं पंडितोंका अनुमान ही न कर सकता था और उनके सिर पर टोपी थी। मैंने सन्ध्या समय दफ़तरसे लौटते हुए बहुतसे बाबुओंको झांसीमें ही देखा था। परन्तु पंडितजी जैसा कोई बाबू न देखा था। जान पड़ा, 'बाबू' के वेशमें वे कोई 'साहब' हैं। विलायती साहब बहादुरसे तो हमलोग मिल ही चुके थे। उसका जो तेज था वह बहुत कुछ उसके अधिकारके कारण था, पंडितजीका प्रताप सर्वथा व्यक्तिगत। हम लोग ससम्भ्रम उठ खड़े हुए। जाड़ेके दिन थे। वे हलके कत्थई रङ्गका नीचा ऊनी कोट या अचकन पहने थे और ऊनी ही सफ़ेद फलालैनका पतलून जैसा पाजामा। बायें हाथमें कुछ कागद-पत्र लिये थे, दायेंमें छड़ी। दफ्तरसे लौटनेवालोंके विपरीत अनातुर धीर गतिसे पैदल आ रहे थे। ऐसे, मानो अभी सवारीसे उतरे हों आफ़िस दूर न था और पैदल आने-जानेसे वे छोटे नहीं होते थे, क्योंकि स्वभावतः बड़े थे। झूठे सम्मानके पीछे वे टहलनेके सुयोगसे वंचित क्यों होते जब सच्चा सम्मान उन्हें सुलभ था। ऊँचे ललाटके नीचे घनी और मोटी भौहें उसके अनुरूप ही थी। उनकी छायामें विशेष चमकती हुई आँखें बड़ी न होने पर तेजसे भरी दिखाई देती थी। पंडितजी वेश-भूषा से सुसंस्कृत आकृतिसे गौरवशाली

और प्रकृतिसे गम्भीर तथा चिन्तनशील जान पड़ते थे। हम लोगोंका प्रणाम स्वीकार कर और हमपर एक दृष्टि डालकर वे कमरेके भीतर जाकर ही रुके। वहां इधर-उधर देख कर और तुरन्त ही 'आइये' कहकर उन्होंने हमें भीतर बुलाया। जबतक हम कमरेमें पहुँचे तब तक छड़ी और कागद-पत्र यथास्थान रखकर उन्होंने अपनी टाइमपीस घड़ी उठाली थी और उसमे ताली देना आरम्भ कर दिया था। वे बड़े ही नियमबद्ध थे और सम्भवतः आफिससे लौटकर घड़ी कूकनेका समय उन्होंने बाँध रक्खा था।

"बैठिए" सुनकर भी हमलोग खड़े ही रहे। हमारा भाव समझकर घड़ी रखते हुए वे पलंग पर बैठ गये। सामनेकी कुर्सियोंकी ओर हाथ बढ़ाते हुए फिर स्निग्ध स्वरमें बोले—बैठिए। हमलोगोंके नाम और परिचयसे वे कुछ आकर्षितसे हुए और हाल ही में हमें पितृहीन हुआ सुनकर सहानुभूति प्रकट करने लगे। पिताजीकी अनन्य भक्तिकी चर्चाके प्रसंगमें उन्होंने यह भी पूछा कि आपलोग किस सम्प्रदायक अनुयायी हैं। 'विशिष्टाद्वैत' सुनकर बोले—हाँ। बहुत दिन पीछे प्रसिद्ध विद्वान माननीय 'बार्हस्पत्य'जीसे जब मैं पहली बार मिला तब उन्होंने भी यही पूछा था और उत्तर सुनकर कहा था, हम विशिष्टाद्वैत मतके नहीं हैं पर अच्छा उसीको मानते हैं। यह कहकर वे मुसकराने लगे थे। मैं भी उन्हींका अनुसरण करके हँस गया था। पंडित जीने 'हाँ' कहते हुए अपना सम्प्रदाय भी बताया था, सम्भवतः वल्लभ। इसी संबन्धमें उन्होंने एक बार कहा था, हमारे पिता कुछ लिखनेके पहले लिखा करते थे—'श्रीलाड़लेश्वराय नमः।' परन्तु अब हम देखते है यह 'लाड़ले' और 'ईश्वर' का संधि-संयोग ही ठीक नहीं है।

पंडितजीसे हम लोगोंकी बात-चीत प्रारम्भ ही हुई थी, इतनेमें भीतरसे एक सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट बिल्ली आई और उछलकर पंडितजीकी गोदमें आ बैठी। उनके कण्ठस्वरसे उन्हें आया जान कर ही वह भीतरसे दौड़ी आई थी। पशु-पक्षी मैंने भी पाले हैं, परन्तु पली बिल्ली मैंने पहले-पहल कहीं देखी थी। मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। मैंने देखा, पंडितजी धीरे-धीरे

उस पर हाथ फेर रहे है और वह हर्ष और गर्वसे एक आसाधारण शब्द कर रहीं है। जो लोग पक्के गानेसे चिढ़कर उसे बिल्लियोंका लड़ाना कहते हैं, वे कही उस बिल्लीका शब्द सुनते तो जानते बिल्लियां भी स्नेह में कैसा प्यारा बोलती हैं। पंडितजीने पशु-पक्षियोंकी चेष्टाओं पर 'सरस्वती' में एक लेख लिखा था। मुझे ठीक स्मरण नहीं, इस बिल्लीको देखकर मुझे उसका ध्यान आ गया था अथवा उसे देखकर इसका।

परन्तु जिस उद्देश्यको लेकर मैं पंडितजीके यहाँ गया था उसके विषयमें कुछ कहनेका मुझे साहस ही न हुआ। मेरा सारा उत्साह न जाने कहाँ चला गया। मेरे अग्रजने प्रसंग चलाकर एक बार कहा भी कि ये भी कुछ कविता बनाते हैं। 'बड़ी अच्छी बात है' कहकर पंडितजीने मेरी ओर देखा। मैं तो कुछ नहीं, कुछ नहीं कह कर संकोचसे सिकुड़-सा गया। मुझे विपत्तिमें पड़ा देखकर फिर उन्होंने कुछ नहीं कहा। कुछ कहनेके लिए मैंने कहा—हम लोग तो सबेरे ही आने वाले थे, परन्तु सुना कि सन्ध्याको ही आपसे भेंट होती है, इसलिए इस समय सेवामें उपस्थित हुए हैं। वे हँसकर बोले – हाँ, सबेरे हम 'सरस्वती' का काम करते हैं और कुछ लेख आदि लिखते हैं। फिर अवकाश नहीं पाते। परन्तु जब आप इतनी दूरसे आये हैं तब क्या हम उस समय भी आपसे न मिलते। कभी झाँसी आया कीजिये और सुविधा हो तो मिला कीजिये।

उनका अधिक समय लेना अपराध करना था। रोकने पर भी हम लोगोंको विदा करने वे बाहर आये। आगतका स्वागत सभी करते हैं, परन्तु अपने छोटोंके प्रति भी उनका सदा ऐसा ही उदार व्यवहार रहा।

अपने पद्योंके विषयमें प्रत्यक्ष कुछ कहनेकी अपेक्षा पत्र-व्यवहार करने में ही मुझे सुविधा दिखाई पड़ी। वस्तुतः उनके प्रभावसे मैं अभिभूत हो गया। पीछे न जाने कितनी बार उनकी सेवामें उपस्थित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, वे भी कृपाकर एक बार यहाँ पधारे, परन्तु वैसा आतंक कभी नहीं जान पड़ा। इसके विरुद्ध जैसे-जैसे निकटसे उनका परिचय मिलता

गया, वैसे-वैसे उनकी सदयका और सहृदयाताका ही अधिकाधिक अनुभव होता रहा। अपने कर्तव्यमें ही वे कठोर प्रतीत होते थे, आत्म-सम्मानका प्रश्न आ जाने पर उनमें उग्रता भी आ जाती थी, अन्यथा उनका-सा कोमल हृदय दुर्लभ ही है। एक बार वाद-विवादमें दूसरे पक्षने लिखा—यह विवाद व्यर्थ है। आप तो ब्राह्मण हैं, आपको क्षमा नहीं छोड़नी चाहिये। पंडितजीने उत्तरमें लिखा – हमने जो आरोप लगाये हैं उन्हें व्यर्थ कहनेसे काम न चलेगा। या तो कहिये वे झूठे हैं, हम आपसे क्षमा याचना करेंगे या उनके लिए खेद प्रकट कीजिये। उस समय हम आपको हृदयसे क्षमा न कर दें तो ब्राह्मण नहीं!

उनकी वैसी वेश-भूषा भी फिर मैंने नहीं देखी। एक बार पैण्टके साथ उन्हें वण्डा कोट पहने देखकर तो ऐसा लगा, जैसे यह उनके अनुरूप न हो। इधर प्रायः कुरता और धोती ही वे पहना करते थे और यह वेश उन्हें बहुत सोहाता भी था। अभिनन्दनके अवसर पर भी वे इसी परिच्छदमें थे। अस्तु।

उस दिन लौटकर मुझे कुछ आत्मग्लानि-सी हुई कि मैं क्यों इतना हतप्रभ हो गया कि अपनी बात भी उनसे न कह सका। और, झूठ क्यों कहूँ, उनके प्रति कुछ ईर्ष्या भी मनमें उत्पन्न हो गई। परन्तु 'सरस्वती' में नाम छपनेका लोभ प्रबल था। आशा भी बलवती थी। कुछ दिन पीछे मैंने एक रचना भेज ही दी और उत्सुकतासे मैं उनके पत्रकी प्रतीक्षा करने लगा। मुझे स्मरण नहीं, इतने लंबे समयमें भी, पंडितजीने मेरे किसी पत्रका उत्तर देनेमें विलंब किया हो। इतनी तत्परता मैंने और किसीके पत्र-व्यवहारमें नहीं पाई। मैंने भी बहुत दिन उनका अनुकरण करनेकी चेष्टा की, परन्तु अन्तमें मैं हार गया और अब तो शरीर और मन प्रकृतिस्थ न रहनेसे एक आध पत्र लिखना भी भारी हो उठा है। परन्तु पंडितजी वृद्ध और क्षीण होने पर भी अन्त तक अपना नियम निभाते रहे, कितनी दृढ़ता थी उनमें।

यथासमय उनका उत्तर आ गया – "आपकी कविता पुरानी भाषामें लिखी गई है। 'सरस्वती' में हम बोल-चालकी भाषामें ही लिखी गई कविताएँ छापना पसन्द करते हैं।" राय कृष्णदास जैसे बन्धुके संसर्गसे भी जो एक चिट भी यत्नसे छाँट कर रखते हैं, मैं पत्रोंके संग्रहमें उदासीन ही हूँ। इसके लिए समय-समय पर मुझे अनुताप भी हुआ है। इसी प्रकार डायरी न रखनेसे प्रसंगवश अथवा अचानक उठे हुए कितने विचार किंवा भाव भी मुझे खो देने पड़े हैं। परन्तु पंडितजीके पत्र न जाने कैसे मैं आरंभसे ही रखता रहा। कुछ प्रारम्भिक पत्रोंकी एक गिड्डी संभावतः कहीं एसी सुरक्षित रक्खी है कि इस समय मुझे भी नहीं मिल रही है! ऊपर मैंने जिस पत्रका उद्धरण दिया है, संभव है, उसमें शब्दोंका हेर-फेर हो, किन्तु बात वही है।

'बोल-चालकी भाषा' अर्थात् 'खड़ी बोली' और 'पुरानी भाषा' अर्थात् 'ब्रजभाषा।' पाठक ही समझ लें, मेरे मनमें अपनी रचनाकी अस्वीकृति खली या व्रजभाषाकी उपेक्षा। मन कुछ विद्रोही था ही, आशा भी पूरी न हुई। अब क्या था, एक कड़ा-सा पत्र लिख दिया। एक बात सुनी थी कि शेख सादी साहबको फ़ारसी भाषाकी मधुरताका बड़ा अभिमान था। एक बार वे यहाँ आये। व्रजभाषाकी प्रशंसा सुनकर उन्होंने नाक सिकोड़ी और भौंह चढ़ाई। घूमते-घूमते वे व्रजमें पहुँचे। वहाँ मार्ग में पहले-पहल उन्होंने एक छोटी-सी लड़कीकी बात सुनी। वह अपनी मातासे कह रही थी – 'मायरी माय, मग चल्यौ न जाय, साँकरी गली, पाय काँकरी गड़तु है।' इस बातका संकेत भी मैंने अतने पत्रमें कर दिया और समझ लिया कि बदला ले लिया। परन्तु उस पत्रका कोई उत्तर न मिला। भगवान् ही जाने, इसे मैं अपनी जीत समझा या अपने प्रहारको सर्वथा निष्फल समझ कर और भी हताश हो गया। प्रतिघात सह लिया जा सकता है किन्तु आघातका व्यर्थ होना प्रतिघातसे भी कठोर होता है। तथापि मेरी क्षुद्रता का वे क्या उत्तर देते? मैंने धृष्टतापूर्वक एक पत्र और भी इस सम्बन्धमें भेजा। वह वैसा ही लौट आया अथवा लौटा दिया गया।

इस बीच कलकत्तेके 'वैश्योपकारक' मासिक पत्रमें मेरे पद्य छपने लगे थे। इससे मुझे कुछ अभिमान भी हो गया था। परन्तु हिन्दीकी एक मात्र प्रतिष्ठित पत्रिका 'सरस्वती' थी। मन मेरा उधर ही लगा था। झख मार कर खड़ी बोलीके नामसे 'हेमन्त' शीर्षक कुछ पद्य लिखे। उन्हीं दिनों स्वर्गीय राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' की 'शरद' नामकी एक कविता 'सरस्वती' में छपी थी। वह पुरानी भाषामें ही थी। 'शरद' छपी तो 'हेमन्त' भी छप सकता है। उसे भेजते हुए मैंने निर्लज्जतापूर्वक इतना और लिख दिया कि प्रसन्नताकी बात है, अब 'पुरानी भाषा' के संबन्धमें आपका वह विचार बदला है। जिस दिन उत्तर मिलना चाहिए था, उत्सुकतापूर्वक मैं स्वयं डाकघर पहुंचा। उनका उत्तर पोस्टकार्डके रूपमें उपस्थित था। धड़कते हृदयसे पढ़ा। लिखा था – 'आपकी कविता मिली। राय साहबकी कविता अच्छी होनेसे हमने छापी है।' अब समझमें आया कि नई-पुरानी भाषा का तो एक बहाना था, मेरी कविता अच्छी न होनेसे न छप सकी थी। यह उस समय भी न समझमें आया कि मेरी रचना अच्छी न थी, फिर भी उन्होंने उसे बुरा न बताकर भाषाकी बात कह कर कितनी शिष्टतासे मुझे उत्तर दिया, यद्यपि यह ठीक था कि बोल-चालकी भाषाकी कविताके ही वे पक्षपाती थे और उसीका प्रचार भी कर रहे थे। जो हो, मेरा जी बैठ गया। 'सरस्वती' आई पर 'हेमन्त' न आया। वह क्यों नहीं आया, आवेगा भी या नहीं, यह पूछनेका भी धीरज न रहा। कन्नौजसे 'मोहिनी' नामकी एक समाचार पत्रिका थी। उसीमें छपनेके लिए मैंने 'हेमन्त' भेज दिया और अगले सप्ताह ही वह छपकर आ गया। एक द्विवेदीजी न सही तो दूसरे गुणग्राहक विद्यमान हैं, यों मैंने मन समझानेकी चेष्टा की। मनने मान भी लिया, कारण, अपमान भी उसीने माना था। तथापि उसके एक कोनेसे यह शब्द उठे बिना न रहा कि – हाय सरस्वती।

नये वर्ष की 'सरस्वती' आई, नई ही सज-धज से। अब उसका रूप-रंङ्ग और भी सुन्दर हो गया। देखकर जी ललच गया। परन्तु जिस बात

की आशा भी न थी उस 'हेमन्त' को भी वह ले आई। मेरा रोम-रोम पुलक उठा। जिस रूपमें मैंने उसे भेजा था उससे दूसरी ही वस्तु वह दिखाई पड़ती थी, बाहरसे ही नही भीतरसे भी। पढ़ने पर मेरा आनन्द आश्चर्यमें बदल गया। इसमें तो इतना संशोधन और परिवर्धन हुआ था कि यह मेरी रचना ही नही कही जा सकती थी। कहाँ वह कंकाल और कहाँ यह मूर्ति। वह कितना विकृत और यह कितनी परिष्कृत। फिर भी शिल्पी के स्थान पर नाम तो मेरा ही छपा है। मुझे अपनी हीनता पर लज्जा आई और पंडितजीकी उदारता देखकर श्रद्धासे मेरा मस्तक झुक गया। इतना परिश्रम उन्होंने किया और उसका फल मुझे दे डाला। यह तो मुझे पीछे ज्ञात हुआ कि मेरे ऐसे न जाने कितने लोग उनसे इस प्रकार उपकृत हुए हैं। नामकी अपेक्षा न रखकर काम करना साधारण बात नहीं, परन्तु काम आप करके नाम दूसरेका करना और भी असाधारण है। पंडितजी अपने संपादकीय जीवन भर यही करते रहे। उनके तप और त्याग का मूल्य आंकना सहज नहीं। हिन्दीके प्रभविष्णु कवि स्वर्गीय नाथूराम शंकर शर्माने एक पत्रमें मुझे लिखा था – "सम्पादकजी बहुधा कविताओंमें संशोधन भी कर देते हैं। 'केरल की तारा' नामकी कवितामें मैंने लिखा था –

"पीठ पर टपका पड़ा तो आँख मेरी खुल गई।<br>
चार बूँदोंसे मिले मनकी लँगोटी धुल गई॥"

इसमें नीचेकी पंक्ति उन्होंने बदल कर छापी –

"विशद बूँदोंसे मिले मन मौज मिसरी घुल गई।"

लाभसे मेरा लोभ और भी बढ़ गया। कुछ दिन पीछे 'क्रोधाष्टक' नामक एक तुकबन्दी मैंने और भेज दी। उपद्रव सहनेकी भी एक सीमा होती है। इस बार क्षुब्ध होकर उन्होंने जो पत्र लिखा वह, इधर स्मृति विकृत होने पर भी, मुझे भली भाँति स्मरण है –

"हम लोग सिद्ध कवि नहीं। बहुत परिश्रम और विचारपूर्वक लिखने से ही हमारे पद्य पढ़ने योग्य बन पाते हैं। आप दो बातोंमेंसे एक भी नहीं

करना चाहते। कुछ भी लिख कर उसे छपा देना ही आपका उद्देश्य जान पड़ता है। आपने 'क्रोधाष्टक' थोड़े ही समयमें लिखा होगा परन्तु उसे ठीक करनेमें हमारे चार घंट लग गये। पहला ही पद्य लीजिए –

"होवे तुरन्त उनकी बलहीन काया।
जानें न वे तनिक भी अपना-पराया॥
होवे विवेक वर बुद्धि विहीन पापी।
रे क्रोध, जो जन करें तुझको कदापि॥"

क्या आप क्रोधको आशीर्वाद दे रहे हैं जो आपने ऐसी क्रियाओंका प्रयोग किया? इसे हम अवश्य 'सरस्वती' में छापेंगे, परन्तु आगेसे आप 'सरस्वती' के लिए लिखना चाहें तो इधर-उधर अपनी कविताएँ छापनेका विचार छोड़ दीजिये। जिस कविताको हम चाहें उसे छापेंगे। जिसे न चाहें उसे न कहीं दूसरी जगह छपाइए, न किसीको दिखाइए। तालेमें बन्द करके रखिये।"

रोष ही मेरे लिए परितोष बन गया। अयोग्य देखकर भी पंडितजी ने मुझे त्यागा नहीं, सदा के लिए अपना लिया। इसी पद्य में मुझे बोल-चालकी भाषामें पद्य रचने का 'गुर' मिल गया। बातें इतनी ही नहीं हैं। परन्तु आज मैं और कुछ न लिखकर अपने प्रभु से यही प्रार्थना करता हूँ कि परलोक में भी उनका-सा पथ प्रदर्शक मुझे प्राप्त हो।

# लम्बी दौड़

**जयसिंह**

सबरे की धूप ऊँचे-ऊँचे झाड़-पेड़ों की फुनगियों से उतर कर गाँव में आने लगी थी। उसी समय किसी नौजवान ने मीठी आवाज में गाया और बीहड़ों पर छाई हुई ठण्ड तक एक प्रतिध्वनि फैल गई। जुगाली करती हुई गाय-भैंसें करवटें बदलकर उठ खड़ी हुईं और चतुरभुज ने गूदड़ा फेंक कर फैले हुए खलियान पर नज़र दौड़ाई। कसकती हुई ठण्डी हवा अब भी नदी के बीहड़ों की ओर से गाँव की ओर आ रही थी।

"धूप निकलने तक सोती रहेगी तो चने के खेत काले पड़ जाएँगे।" चतुरभुज ने पास ही खटिया पर सोई हुई गीता के बदन से गूदड़ा खींच लिया।

"मेरे उठने से चने के खेत पर ठण्ड नहीं गिरेगी।" गीता जग रही थी। उसने भरपूर अंगड़ाई ली और आँखें बन्द कर लीं।

"...अरे उठ! दिन निकल आया, कोई देखेगा तो क्या कहेगा?"

"...यही कि औरत ने आदमी को वश में कर लिया है।"

गीता की उनींदी आँखें कटाक्ष करते हुए फैल गईं। रात भर की एकत्रित उष्णता ने उसके गदीले गालों को सुनहरी धूप में रंग दिया था।

"तुम एक दिन भी चैन नहीं लेने देते। सारा बदन टूट रहा है। अनाज कूटने कोई दाड़किया (मजूर) भी तो नहीं लगाते। घड़ी दो घड़ी की बात हो तो मानूं, सबेरे से शाम तक मुझसे नहीं झींका जाता।"

"तू तो पिंगल देश की पद्मनी है न! बाप के घर घूरे ढोने और खजूर के थापड़े तोड़ते तू न थकी और यहाँ आते ही तेरे हाथों की मेंहदी घिसने लगी।"

"बाप के घर कुछ भी करती रही हूँ, उससे तुम्हें क्या। तुम्हारी तो मक्खियाँ नहीं उड़ती थीं। मेरा पैर पड़ते ही कैसा चमन हो गया। अनाज कूटते नहीं खुटता।" गीता ने बनावटी क्रोध प्रकट किया और एक झटके से उठ खड़ी हुई। झूमती, गदराई हुई पत्तों-भरी डगाल-सी उसकी परछाई खलियान में फैल गई और उसने काँटों की बागर (बागड़) के पार गाँव की पाठशाला पर नज़र फेंकी, जहाँ एक-एक, दो-दो कर गाँव के लोग जमा हो रहे थे।

"आज न्याव (न्याय) पंचायत लगेगी।" चतुरभुज ने सिर हिला कर स्वीकृति दी और बोला—"आज तेरी छुट्टी है। दाड़किया काम करेगा और तू रखवाली रखेगी। मैं जाऊँगा बयान देने।"

गीता ने घूम कर एक नज़र चतुरभुज पर डाली और न जाने क्या सोचते हुए बोली—"तुम झूठा बयान दोगे, है न। तुम्हें कुछ भी मालूम नहीं उस घटना के बारे में। तराई गाँव-वालों को तुम बेमौत मरवा दोगे और यह बात बदन पर लगे डाम (दाग) की तरह बरसों याद रहेगी कि गीता के घरवाले ने झूठा बयान दिया था। फिर तुम झूठे मशहूर हो जाओगे। सबसे भली चुप। कह दो कि मैं कुछ नहीं जानता।"

गीता किसी प्रौढ़ा की तरह चतुरभुज को समझा रही थी।

"सच कहूँगा तो गाँव-वाले नाराज़ होंगे। लेकिन सच ही कहूँगा।" चतुरभुज ने बहुत ही नर्म जबान से मानो गीता की बात मान ली।

"साफ़ कह देना कि सारा कुसूर बाइसिकल-वाले का है। और अगर न बने तो मेरा नाम ले देना, मैं सब कह दूंगी।"

"नाम मेरा लिखा है, बयान मुझे ही देना होगा।"

गीता ने सोचा, अपने घरवाले को वह इतना समझाये, यह तो ठीक नही है। उस घटना के दिन वह भी तो तराई गाँव गई थी। वह यह क्यों न कहे कि उसने भी एक साइकिल सवार को गड्ढे में पड़ा हुआ देखा था और वह इस तरह छटपटा रहा था, मानो कोई कुत्ता जरूरत से ज्यादा कच्चा माँस नोचकर अफरा गया हो।

वह बोली – "तुम इतना ही कहना कि मैंने अपने गाँव के जमादार को तराई गाँव की ओर जाते देखा था। बाद में वे एक खड्ढे में गिरे हुए नज़र आये। न कुत्ता देखा और न कुत्ते के मालिक लींबिया को ही देखा। इसके आगे सही-सही तुमसे न बने तो मेरा नाम ले देना।"

चतुरभुज चौंक उठा। वह डर गया था। गीता बयान देगी? वह उसके साहस पर दंग था। उसकी घबराहट दूर हो गई थी और वह बहुत ही सलरता-पूर्वक देखने लगा था। उसने गीता की पीठ पर आँखें गड़ा दीं, जहाँ फटी हुई लूगड़ी से उसकी चोली की कसें नज़र आ रही थी। वह ऐसी दिख रही है, जैसे आज ही ब्याह कर लाया है। चतुरभुज बड़ी देर तक देखता रहा। उसने कंधे पर अंगोछा डाला और बागड़ के बाहर हो गया।

शाला-भवन गाँव के लोगों से ठसाठस भरा हुआ था। वे ऐसे लग रहे थे, मानो किसी दुःखपूर्ण घड़ी के लिए एकात्रित हुए हैं। सभी के चेहरों पर कौतूहल-पूर्ण उत्सुकता का अभाव था। घोर स्तब्धता में खाँसने, खँखारने के अलावा, वे निर्जीव-से, घुटने मोड़ कर और उन पर कुहनियों का वज़न डालकर बैठे थे। चलती-फिरती न्याय पंचायत उनके गाँव में आती थी और लोग यंत्रवत् चले आते थे। मुकदमे लड़े जाते और फैसले होते, पर लोगों

में कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। नातरे और पुनर्विवाह के मामले वे स्वयं ही निपटाते थे। दूसरी बातों के लिए लोगों में बहुत कम लगाव था। वे चाहे एक-एक, दो-दो कर किसी बात पर माथा मारते हों, पर पंचों में बैठकर टेढ़ी-तिरछी बात करने का किसी का साहस नहीं था। वे आते-जाते राम-राम कर पुनः विकारहीन-मुद्रा मे खो जाते!

शाला-भवन की एक अन्य कोठरी में न्याय-पंच और उसका कारकून आवश्यक कागजों की जाँच-पड़ताल कर रहे थे। दो चौकीदार बंगड़ी लगी लाठियाँ लेकर दरवाजे पर पहरा दे रहे थे। पंचों के चेहरे बहुत ही खिन्न और उदास लग रहे थे। उन्हें स्वप्न में भी खयाल न था कि ऐसा पेचीदा मकदमा उनके इजलास में पेश होगा। चोरी करने या छेड़खानी करने का कोई मामला होता तो वे जुर्माना कर देते, झाड़ में बँधवा देते, उठ-बैठ करवाते। लेकिन यह जो मामला पेश हुआ था उसने उन्हें हैरान कर दिया था। उन्हें आश्चर्य था कि ऐसे मामले को प्रवेश की अनुमति ही क्यों दी गई है। पर अब तो पेशी शुरू होने वाली थी।

चतुरभुज पीछे की पंक्ति में जाकर बैठ गया। वह डरा-डरा देख रहा था कि कहीं गीता न चली आए। उसने जमीन कुरेदते हुए एक बार पुनः निश्चय किया कि जो कुछ कहेगा, वह राम-धरम को सिर पर रखकर कहेगा और बिलकुल सच-सच कहेगा।

सभी लोग फूटे हुए ढोल की तरह खामोश थे। जिन लोगों ने घटना को सुना-भर था, वे उसे कल्पना में भर-भर कर उभार रहे थे, पर कुत्ते की ठीक-सी शक्ल उनके दिमाग़ में नहीं बन पा रही थी। दौड़ती हुई बाइसिकल उनके दिमाग़ में घूमती और भैंस जैसी काली चीज केवल स्मृति पर टिक पाती। लेकिन तराई गाँव के लोग अपने कुत्ते को जंजीर से बांधे बहुत ही ही कठोर मुद्रा में कलौद गाँव-वालों की ओर ताक रहे थे। वे सर्वथा उनके विचारों से भिन्न लगते थे। उनके चेहरों पर अपेक्षाकृत तनिक भी ढिलाई का भाव नहीं था।

रह रह कर सभी की दृष्टि एक काले-कलूटे लड़के पर केन्द्रित हो जाती थी, जो कुत्ते के निकट बहुत ही घबराया-सा बैठा था। चतुरभुज ने भी देखा – वह लींबिया, कैसा भयभीत-सा लग रहा था। कलौद गाँव के जंगलात के जमादार की साइकिल, तराई गाँव का कुत्ता और कुत्ते का मालिक लींबिया – मोटे तौर पर चतुरभुज अभी इतना ही सोच सकता था। दोनों गाँवों के बीच कोई दुश्मनी नहीं, पर वे अपने-अपने गाँव का पक्ष लेते दीखते थे।

अदालत की कार्यवाही आरम्भ हुई और चौकीदारों के लट्ठ तन गये। सबसे पहले कलौद गाँव के साइकिल-वाले जमादार, दाँत टूटने से, जिनकी शक्ल पहिचानी नहीं जाती थी, टूटे बैल की तरह हड़बड़ा कर उठे और अपनी खाकी जीन के कोट को खींचते हुए आगे बढ़ गये। चारों ओर सन्नाटा छा गया और शाला-भवन के पीछे के तम्बाकू के खेत में ऊब करते हुए घोड़े, और दुलत्तियाँ झाड़ते हुए गधों ने बिगुल बजा कर गाँव-वालों में नवीन चेतना का संचार किया।

"मैं मामूली आदमी नहीं, सरकार का कर्मचारी हूँ।" जमादार ने बयान देना शुरू किया। "पहले मेरे पास एक टट्टू था और उसी पर बैठ कर मैं जंगल की गश्त किया करता था, लेकिन उस समय राजा का राज था। मैंने घोड़ा बेच कर साइकिल खरीदी, ताकि मैं तेजी से गश्त कर सकूँ। तराई गाँव-वाले तभी से, मुझसे ईर्ष्या करने लगे। चोरी-चोरी लकड़ी काटने की इनकी आदत बहुत पुरानी है। मैंने उसी दिन गाँव में जाकर चोरी की लकड़ी बरामद की। ग्राम-पंचायत साक्षी है कि इन लोगों ने चूल्हा-टैक्स, खूँटा-टैक्स और यहाँ तक कि श्रम-टैक्स भी नहीं चुकाया। हाँ, तो तराई गाँव के लोग उस दिन लकड़ी काटने गये थे। गाँव में सबसे शैतान लड़का लींबिया, कुछ छोकरियाँ और लुगाईयाँ थीं। लींबिया को मैंने एक मूसल घड़ते हुए देखा। मैं साइकिल से उतर भी नहीं पाया था कि लींबिया कुत्ते को छू कर मेरे पीछे भागा। कुत्ते ने मेरी सायिकिल पकड़ ली।"

जमादार हाँफ गया था। उसने ईर्ष्या-पूर्ण दृष्टि से कुत्ते की ओर इशारा करते हुए कहा – "इस शेर बब्बर कुत्ते ने मुझे पैर में काटा और लींबिया ने मुझे खड्ढे में धकेला। मैं गिरते ही बेहोश हो गया और कुत्ता मेरी छाती पर चढ़ कर नाक चाटता रहा। इस बीच लींबिया ने मेरी साइकिल के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। मैं न्याय की मांग करता हूँ कि मुझे नई साइकिल दिलाई जाए और इस कुत्ते और लींबिया को फाँसी पर टांगा जाय।"

"तुम बेहोश थे तो तुमने लीबिया को साइकिल तोड़ते कैसे देखा ?" चतुरभुज सबके पीछे से चिल्लाया और सभी लोगों की गर्दनें आश्चर्य से मुड़ गईं। अपने ही गाँव का आदमी, अपने ही जमादार के खिलाफ जिरह करे। सभी लोग मन ही मन गुर्राये और चौकीदारों ने डंडे उठा कर उसे चुप कर दिया।

एक के वाद एक, कई लोगों के बयान हुए। कलौद गाँव के लोगों ने जो क़िस्सा बयान किया था, उस हिसाब से यह एक संगीन मामला बनता नज़र आता था। लेकिन तराई गाँव के लोगों ने जो कुछ कहा था वह सच था।

कलौद गाँव से तराई गाँव पाँव-पैदल पहुंचने में कोई आधा घन्टा लगता था और यह समय भी, ओस भरी बड़ी-बड़ी घास से ढकी पथरीली पगडंडी पर और निस्तब्धता में ही बीत जाता था।

गाँव कुछ ऐसी जगह बसा था कि उसके बाजू निकलने-वाले दोनों रास्तों पर चलते हुए यह विश्वास नहीं होता कि यह रास्ते बस्ती की ओर जाते हैं। घाटियों की ढालू जगह में, बड़ी-बड़ी घास में छिपे ये रास्ते अनजानों के लिए भयप्रद था। नदी किनारे की चट्टानों से, ये दो एक मोड़, जहाँ से शुरू होते थे, वहीं खत्म हो जाने के लिए थे। तराई गाँव के भीलों की आँखें इन्हीं रास्तों पर लगी रहती थीं कि कहीं कोई आ तो नहीं रहा है।

लोग जानते थे कि आज के जमाने में गाँव में आने-वाले कौन लोग होते हैं। ऐसे आने-वाले अजनबियों की नज़र से बचे रहना, उन्हें टाल देना, किसानों के पड़ोस में बसने-वाले इन लोगों की प्रकृति का व्यवहारिक लक्षण था। कोई आता तो वे ढोठ और उदासीन से लगते। उनकी कष्ट-साध्य काया, मुर्गी के पैरों की तरह खुश्क और दुर्बल लगती। वे घास में छिपे हुए खरगोश की तरह कानों और हाथों को नीचे गिराये, थके हुए ऊँट की तरह 'अड़्ड़ाते'।

लींबिया अक्सर गाँव-वालों से कटकर रहता था। वह गाँव-वालों की उदासीनता को बहुत ही ढीठता-पूर्वक देखता, मानों उसका अन्तर्मन कभी चेतता ही न हो। वह किसी के साथ काम पर भी नहीं जाता और दिन भर कुत्ते को साथ ले, गिलोल चलाया करता या मछलियाँ मारा करता। काम के प्रति उसकी घोर उपेक्षा ने गाँव-वालों को दुःखी कर दिया था।

एक दिन गाँव में कोई नहीं था। मर्द सभी लकड़ियाँ काटने गये थे कि लींबिया ने गाँव में एक साइकिल सवार को देखा। यह आदमी किस उद्देश्य से आया था, यह समझे बगैर ही वह टापरे के पीछे जा छिपा। साइकिल सवार का आना, एक बहुत बड़ा अपशकुन की तरह था। बाद में जब उसे पता चला कि साइकिल-वाला सभी औरतों से एक-एक रुपया घूस ले गया और गाँव भर का दूध-दही चाट गया, तो उसकी भृकुटी तन गई।

अठवाड़ी-पखवाड़ी इसी तरह वह चोरों की तरह आ धमकता और औरतों की गिरह से रुपया-आठ आने निकलवा कर भाग जाता। लींबिया इसे देखते ही टापरे के पीछे जा छिपता।

"तुम सब चोर हो, चुपके से लकड़ी काटते हो। जानती हो मेरे पास यह क्या चीज़ है। यह सरकार का हुक्म है।" और वह साइकिल की घन्टी बजाकर सबको डरा देता।

"लींबा भी कैसा आदमी है। भगवान ने उसे आदमी बनाकर बुरा किया। चील देख कर मुर्गी की तरह आँख भींच लेता है। इसकी चहेती सुनेगी तो क्या कहेगी। कैसा डरपोक है लींबिया।" औरतें मन ही मन कुढ़तीं और अपने साथ-साथ उसके लिए भी सत्यानाश की दुआएँ मांगतीं, पर लींबिया टस से मस नहीं होता। कभी-कभी औरतों की झिड़कियों की झलक पाकर, जो उसके तरुण पौरुष पर चोट करती होगी; वह नदी किनारे जाकर चुपचाप रोया करता।

"अच्छा हो। काला मुँह कर, कहीं चलाजाय। जो कमा नहीं सके उसे तूंबा लेकर घूमना चाहिये। ओ! अपंग की औलाद, तूने गाँव का सत्यनाश कर डाला।" जंगल से थका-मांदा लौटा हुआ लींबिया का बाप अपने टूटे हुए पीले दाँतों को निपोरता हुआ बड़बड़ाता और भावावेश में यह कल्पना करने लगता कि लींबा उसे मारने दौड़े, पर लींबा नाड़ तक ऊँची नहीं करता।

जंगलात के जमादार और उसकी साइकिल ने गाँव-वालों की नाक में दम कर दिया, पर इससे निस्तार का किसी को उपाय नहीं सूझता था। अधिक-से अधिक वे साफ़ रास्तों पर काँट-माट इकट्ठे करने तक ही सोच सकते थे। इससे आगे उनकी बुद्धि काम नहीं देती थी। जहाँ थोड़ी-सी भी बुद्धि काम दे जाती, वहाँ वे अपनी ही औरतों पर ही टूट पड़ते थे।

"उसे गाँव में आने ही क्यों देती हों। फिरकल औरतों! तुम्हें देख-देख कर ही वह आता है।"

"वह घोड़े पर बैठकर आता होता तो टापें भी सुनाई पड़तीं।" वे अपनी असमर्थता प्रकट करतीं।

"वह देखो, बिल्ली की तरह भागता हुआ आ रहा है।" औरतें बतातीं और लींबिया के पैर काँपने लगते और वह टापरे की आड़ लेता हुआ भाग जाता।

"वह देखो, वह आ रहा है।" मेड़ पर चढ़ी हुई लड़की ने बताया।

लींबिया के पैर काँपे। उसे अपनी साँस क्षण भर को रुकती-सी लगी। आँखों पर भारीपन छाने लगा। उसे लगा, मानो उसके पैर नीचे से किसी ने मज़बूती से जकड़ लिए हैं। उसने गर्दन फेंक कर नज़र घुमाई, मानो वह किसी सहारे की तलाश में है। वह लोटे की छड़ों की तरह खम ठोक कर खड़ा था और उसके हाथ एक हरकत के साथ तनते जा रहे थे।

औरतें देख रही थीं, वह अब भागेगा। लेकिन वह भागा नहीं। "क्या कर लेगा वह मेरा?" — लींबिया ने मन ही मन दोहराया और चेहरे पर कठोरता लाने का प्रयत्न करने लगा। उसे संतोष था कि आज वह भागा नहीं। वह तो ढीठ है, कुछ काम नहीं करता। औरतें उपहास करती रहें और कुछ भी कहें, उसे तो दोनों वक्त भर-पेट रोटियाँ और मीठी नींद चाहिए। अब चाहे सब भाग जायें, वह नहीं भागेगा।

"गेंदिया . . . गेंदिया।" उसकी तेज आवाज़ ढलवान तक फैल गई और भूरे रंग का एक कुत्ता पीछे से चुपचाप आया और उसके टखनों से कान रगड़ कर दुम हिलाने लगा। वह ऊँची नाक कर, शिकार की टोह लेता-सा लगा, क्योंकि जब कभी लींबिया उसे शिकार के उद्देश्य से ही आवाज़ देता था। यह पतले पँजों और चमकती आँखों-वाला, बड़ा कदावर कुत्ता था। कुत्ते के पास आ जाने पर भी, जब उसने कोई आदेश नहीं दिया तो कुत्ता तड़प उठा। वह ऊपर-नीचे ताकता हुआ मुँह चिढ़ाने लगा था।

साइकिल सवार जमादार आज सदैव से अधिक प्रसन्न था। उसे आज एक आदमी नज़र आ गया था और उससे वह वे सब बातें कर सकता था, जो सहज ही औरतों से करने में थोड़ा संकोच या भीरूपन का अनुभव करता था। किसी लड़की या औरत को एक विचित्र-भाव में छेड़ना कुछ अस्पष्ट बातों तक ही था और उससे आगे आसान भी नहीं था। आज एक आदमी गाँव में था और उसके शब्दों को पकड़ कर वह काफ़ी फ़ायदा उठा सकता

था। अपनी इच्छा की सारी चीज़ पा जाने पर भी वह ठण्डी छाया में सोकर उससे अपनी पगतलियां मसलवा सकता था या कुल्हें दबवा सकता था।

वह साइकिल से नीचे कूद पड़ा और इस तरह आगे बढ़ा, मानो किसी को डराने के लिए किसी जंगली जन्तु को ठेले जा रहा हो।

लींबिया ने जब सलाम नहीं किया तो वह भभक उठा। ठुड्डी पर हल्की-सी दाढ़ी के बीच उसका अधचपटा नाक, मानो शोर करने लगा। उसने अपने पोपले गालों में हवा भरकर कहा – "खड़ा-खड़ा मरदूद की तरह क्या ताक रहा है। खाट बिछा और सभी लोगों को हाजीर कर।" और वह ऊँची आवाज़ में गुर्राया –"निकलो बाहर। सबके वारंट लेकर आया हूँ।"

लींबिया ने "हूँ" के अलावा कोई उत्तर नहीं दिया। खरखराहट के साथ एक भारी आवाज़ लींबिया के गले से निकली। गाँव में ऐसी आवाज़ पहले कभी नहीं सुनी थी। औरतें सहम कर ओट में हो गई। मानो वह कह रही हों – लींबिया ऐसा मत बोल, गाँव की आत्मा दुःख पाएगी। न बोलने पर भी आत्मा तो दुःख पा ही रही थी, फिर वह क्यों न बोले!

"लींबिया झगड़ा करेगा।" औरतें यह हावभाव देखते ही काँपने लगीं।

"बिछा दे रे खाट। सरकार के आदमी हैं।" किसी बूढ़ी औरत ने दया और सम्मान की भावना दिखाई, पर लींबिया अपनी जगह से हिला नहीं।

"जिधर से आये हो, उधर चले जाओ।" लींबिया ने हकलाते हुए कहा। "गाँव में कभी पैर दिया तो सिर तोड़ दूँगा।" लींबिया की दोनों टाँगें निर्जीव-सी, सलाखों की तरह जमीन पर टिकी थी। और उनके बीच खड़ा कुत्ता मचलने लगा था, मानों वही उन काली और पतली टांगों की जान हो।

"चुप रह हरामजादे।" जमादार क्रोध से काँपने लगा। उसने बचपन से बुढ़ापे तक हुकूमत की थी। उफ्! कहने वालों की टाट गंजी करवा दी थीं। और अब ऐसा जमाना आया कि यह गंदा, कमीन लड़का सामने दरवाज़ा बन कर खड़ा था। इस दरवाज़े को लातों से ही तोड़ना होगा। सचमुच जमादार की अन्तर-आत्मा चोट खा गई थी। उसका अपमान हो रहा था और मूर्ख औरतें पल्लुओं में अपने गन्दे दाँत चमका रही थीं।

जमादार, सरकार, पुलिस, जेल और फांसी की धमकियाँ देने में इतना तल्लीन हो गया था कि एक बार तो वह भूल गया कि कोई लड़का उसके सामने खड़ा है। उसे तो औरतें ही नज़र आ रही थीं और रोब गाँठने के लिए नये-नये शब्द हलक में घोल रहा था।

"चुप हो जाओ, बड़बड़ाओ मत।" जमादार सहम गया। "एक-दो तीन में अगर यह ढलवान पार नहीं किया, तो इसमें मेरा नहीं, तुम्हारी टाँगों का दोष होगा और तुम घर जाकर पछताओगे भी नहीं कि तुम्हारी बूढ़ी टाँगों ने क्यों तुम्हारा साथ नहीं दिया? अब हमारे गाँव का घी, दूध और रुपया-आठ आना, कोई तुम्हारी सहायता को नहीं जायगा।"

जमादार घबरा-सा गया। पागल आदमी और मोटे-ताजे जानवर से डरना ही चाहिये। उसके बूढ़े विवेक ने साथ दिया और मुँह से भद्दी गालियाँ देता हुआ साइकिल घुमाकर मुड़ गया।

साइकिल तेजीसे पच्चीस पावण्डा आगे बढ़ गई और लींबिया ने कहा – 'एक।'

'दो।' वह पचास पावण्डा आगे जा चुकी थी। जमादार अपने शरीर की सारी चिकनाइयों पर ध्यान जमा कर, दोहरी कमर से ऊब करते हुए पैंडल मार रहा था।

लींबिया के चेहरे पर हँसी उभर आई और उसने अपने कुत्ते को पुचकार कर 'हू' कर दिया।

ढलवान पर जाते-जाते, कुत्ता बम के गोले की तरह साइकिल से टकराया और उसके बाद लींबिया कुछ न देख सका, वह टापरे की ओट में चला गया।

तराई गाँव वालों ने लींबिया के पक्ष में और कलौद गाँव-वालों ने जमादार के पक्ष में बयान दिये थे। चतुरभुज ही एक ऐसा गवाह निकला जो तराई-वालों की बैल पर बोला था। गाँव-वाले उसके इस व्यवहार पर अवाक् थे।

अन्दर बैठी हुई पंचायत, दोनों पक्षों के बयान सुनने के बाद इस सोच-विचार में पड़ी थी कि, क्या फ़ैसला दे? साइकिल टूट जाने से जमादार को माली नुकसान हुआ था। दाँत टूट जाने से उसे शारीरक और मानसिक क्षति भी पहुँची थी।

'जमादार को नई साइकिल दिलाई जाए और कुत्ते की टाँग तोड़ दी जाए।' यही विचार कलौद-वालों के मस्तिष्क में घूम रहा था। न्याय करने-वालों के काम में भी इसकी भनक पड़ चुकी थी।

कुत्ता एक जंजीर से बंधा था और तराई गांव-वाले उसे घेरे हुए थे। उनके चेहरे चिन्ता के कारण लटक गये थे। लींबिया निर्विकार रूप से शून्य में ताकता-सा लगता था। वह तब तक कुछ भी नहीं बोला था। उसने इतना भर कहा भा, 'मेरा कुत्ता किसी के पीछे नहीं भागता।' वह बार-बार इसी बात को मन ही मन दोहरा रहा था, पर दुबारा कहने की हिम्मत नहीं होती थी।

वह हिम्मत करके उठा और उसकी पतली टाँगें सलाखों की तरह तन गईं। सभी की आँखें उस पर जा टिकीं। अब शायद लींबिया अपना दोष स्वीकार कर लेगा। जमादार के मुँह पर मुस्कुराहट नाचने लगी।

"अगर परीक्षा ही लेना है, तो मेरे कुत्ते को किसी के पीछे लगा कर देख लो।" लींबिया के इन शब्दों से चारों ओर स्तब्धता छा गई। न्याय-पंचों के कान खड़े हो गये।

"दूध का दूध और पानी का पानी। कर ली जाय यह भी परीक्षा, और जो कुसूरवार हो उसे जेल भिजवाया जाय।" चतुरभुज भी खड़ा हो गया। जमादार को क्षण-भर यह समझ में नहीं आया कि क्या कहा गया है। पर वह अन्तर-भय से इस तरह काँपने लगा, जैसे उसकी टाँग काटी जाने-वाली है। कुत्ता उस पर छू किया जायेगा। हाय रे! इस बार वह मेरे पैर नोच खायेगा। मुमकिन है, गर्दन ही पकड़ले और इस बुढ़ापे में कुत्ते के हाथों मरना पड़ेगा। इन लोगों को हो क्या गया है? लट्ठ के लट्ठ मूर्ख!" जमादार को न्याय-पंचों और सरकार पर इतनी ज्यादा अश्रद्धा कभी नहीं हुई थी।

वह बड़ी कठिनाई से अपने पैरों खड़ा हुआ, और चेहरे पर फैली हुई दीनता को छिपाता हुआ आवाज़ बदल कर बोला—"अगर कुत्ते ने मेरे पैर पर नाक भी अड़ाई, तो तराई गाँव-वालों को मुझे नई साइकिल देनी होगी।"

"और अगर काट खाया, तो मोटर माँगोगे?" चतुरभुज ने उपहास-पूर्ण दृष्टि जमादार के मुर्दाल चेहरे पर डाली।

एक पंच ने कहा—"जब, सब कहते हैं, तो यही कर लिया जाय।" सभी लोग खड़े हो जाए और क्षण भर में शाला भवन के सामने का मैदान आदमियों से भर गया। जमादार के बुरे हाल हो रहे थे। वह सिर से पाँव तक काँप रहा था। इस वक्त वह अगर बदल जाये, तो फ़ैसला तराई-वालों के पक्ष में गिरेगा और सभी दोषी मानेंगे: इससे तो कुत्ता उसे काट खाए तो अच्छा; साइकिल तो मिलेगी। मन को समझा कर वह आगे बढ़ा।

चतुरभुज ने जमादार को बहुत ही श्रद्धापूर्वक दूर रास्ते पर खड़ा किया और कहा— "उधर से आवाज़ आए कि भागो, तो थोड़ा भागने लग जाना, समझे!"

डर के मारे जमादार की नसें तन आई थीं और सांस फूल रही थी।

लोगों की कतार बंध गई। लींबिया, कुत्ते की जंजीर पकड़ कर खड़ा हो गया। बस, अब 'छू' बोलने की देरी थी। पाँचों पंच, न्याय की मूर्तियाँ बने, निर्लिप्त-भाव से देख रहे थे।

"कुत्ते की जंजीर खोल दे!"

लींबिया ने जंजीर खोल दी।

चतुरभुज लम्बी आवाज़ में चिल्लाया और जमादार भागा।

"लींबिया 'छू' लगाओ 'छू'।"

जमादार जिस ओर भाग रहा था उस ओर थोड़ा बढ़कर लींबिया ने उधर ही 'छू' लगाया। पहले कुत्ता तना, कमर सीधी की, पूंछ ऊँची की। कान फड़फड़ाये। आँखें निकाली और गुर्राया।

"छू! छू।!"

कुत्ते ने कान नीचे किये और अपनी गर्दन लींबिया की टाँगों में फंसा कर, हाँफता हुआ वहीं बैठ गया। कुत्ता नहीं भागा, पर दूर रास्ते पर जमादार सिर पर पैर रखकर किसी जवान आदमी की तरह भाग रहा था!

# जब कि दिमाग खाली है

**हजारीप्रसाद द्विवेदी**

जब कि दिमाग खाली हो और दिल भरा हो, तब शास्त्र-चर्चा अच्छी नहीं लगती। मेरी अवस्था आज ऐसी ही है। अभी उस गठीले-बदनवाले पठान को देख चुका हूँ। हींग बेचने आया था। विराट शरीर सौम्य मुख, निर्भय नेत्र और 'कुछ परवा नहीं' चेहरा।

बोला – "बाबूजी, उस ऊँची कोठी वाले बंगले में कौन रहता है?"

उसका मतलब 'उत्तरायण' से था। फिर बिना जवाब पाए ही पूछ बैठा– "वह हिन्दू तो नहीं जान पड़ता, बाबू! क्या मुसलमान है?"

मैंने जवाब दिया – "नहीं"।

"ईसाई है?"

"नहीं"।

"मुसलमान भी नहीं, ईसाई भी नहीं!"

"हाँ"

"तो क्या हिन्दू है?"

"कह सकते हो।"

सवाल गुरुदेव के बारे में पूछे जा रहे थे। मैं अन्यमनस्क-भाव से जवाब दे रहा था। पठान युवक हमारी उदासीनता से कुछ रूठ-सा गया। अब व्यर्थ की बात न पूछ कर उसने काम की बात पूछी –

"वह हींग तो खाता होगा, बाबू?"

"मैं क्या जानूँ?"

उसने अधिक रुकना उचित नहीं समझा। सलाम करके चलता बना। पर मेरे कानों पर अब भी उसके शब्द रेंग रहे हैं–"मुसलमान भी नहीं, ईसाई भी नहीं, तो क्या हिन्दू है?" इस अभागे देश में जो मुसलमान भी नहीं ईसाई भी नहीं, वह हिन्दू होता है। यह पठान युवक पाणिनि और यास्क का वंशज है, पर चूँकी वह मुसलमान है, इसलिये वह हिन्दू नहीं। इसके पूर्वजों ने वैदिक साहित्य के अनमोल अंशों का संपादन किया था; पर चूँकि वह मुसलमान है, इसलिये वह हिन्दू नहीं और इसलिये उसके लिए वह साहित्य कुफ्र है।

पाणिनि की सन्तान आज हींग बेचती है क्योंकि वह हिन्दू नहीं है, और जो हिन्दू नहीं, उनके लिये अपने पूर्वजों की सर्वश्रेष्ठ वस्तुएँ भी त्याज्य हैं। यह विचित्र युक्ति है। अफसोस मैं नहीं करता। हिन्दू कहलाने वाले जीवों की बात कम विचित्र नहीं है। कभी-कभी तो ऐसी विचित्र बातें दुनिया के किसी भी कोने में नहीं मिल सकतीं। यहाँ लोगों को कुत्ते-बिल्ली से भी बदतर माना जाता है, क्योंकि वे हिन्दू होते हैं। यहाँ विधवाओं को फुसलाया जाता है और गर्भपात भी कराया जाता है, क्योंकि वे हिन्दू है। यहाँ वेश्याओं को मन्दिर में ले जाया जाता है, पर सती अन्त्यज-रमणियों को प्रवेश नहीं करने दिया जाता, क्योंकि वे हिन्दू हैं। यहाँ अन्याय को न्याय कह कर चला दिया जा सकता है। इस समाज के भीतर इतनी दुर्बलताएँ, इतनी अव्यवस्थाएँ, इतने मिथ्याचार हैं कि समाज मरने को बाध्य है। हिन्दू माने-हिन्दू भावाभाव! पुराने जमाने के अपोहवादी फिलासफरों का मत था कि किसी पदार्थ को अभाव के रूप में सही बताया जा सकता है। अर्थात् घट का सच्चा परिचय

यह है कि जो घट के अभाव का अभाव है। पठान युवक ने आज मेरे दिमाग के अपोहवादी दार्शनिक को उत्तेजित कर दिया। मैं सोचता हूँ कि हिन्दुओं का परिचय अभाव के रूप में ही दिया जा सकता है। लेकिन यह भी कैसे मान लिया जाय? शास्त्रों, पुराणों, स्मृतियों, स्तोत्रों और कर्मकाण्डों के विधि-निषेधों से भरे इन पोथों को हम अभाव कैसे मान लें? काव्यों नाटकों, चम्पुओं, आख्यायिकाओं और कथाओं के निर्माण करने वाली इस जाति को अभाव कैसे मान लें?

लेकिन जब दिमाग खाली हो और दिल भरा हो, तो शास्त्र-चर्चा रुचती नहीं। नहीं तो, जिस जाति ने एक बार वक्षुतट से महाक्षोण तक का एकच्छत्र राज्य किया था, जिसकी संस्कृति महा-पर्वतों को लाँघ कर और महा-समुद्रों को तैर कर भी विजय-ध्वजा फहरा सकी थी, जिसकी विजयवाहिनी पूर्वापर समुद्रों के भीतर सिंहनाद करती रही, उसके विषय में इतना चिन्तित हो जाने की कोई जरूरत नहीं। यह ठीक है कि पाणिनि की सन्तान आज हींग बेचती है और कुमारजीत के सगे-सम्बन्धी आज सीमात के हिन्दुओं की बहू-बेटियों का व्यवसाय करते हैं, और इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि कालिदास की विहार-भूमि में आज एक ऐसी सभ्यता (या बर्बरता) का ताण्डव हो रहा है, जो चित्त को मथे बिना नहीं रह सकता, फिर भी भरोसा यह है कि वह रक्त बचा तो है, आज नहीं तो कल वह अपना प्रभाव फैलायेगा ही। लेकिन मैं दूसरी ही बात सोच रहा हूँ। कहते हैं 'फलेन परिचीयते वृक्षः'– अर्थात् दरख़्त की पहचान फल से होती है। आज जो हिन्दुओं की दुरवस्था है, वह है तो उसी बहुविद्योषित समृद्धिकालीन सभ्यता का परिणाम। कैसे कहूँ कि वह अच्छी थी, जबकी उसका परिणाम स्पष्ट ही बुरा नज़र आ रहा है?

समृद्धि-काल! सचमुच ही वह समृद्धि का युग था। उज्जैनियों के सौध-वातायनों से झाँकते हुए के अलकार्पित रक्ताशोक और श्रवणदत्त कर्णिकार अब भी भूले नहीं हैं, सिप्रा की चटुल-कुवलय-प्रक्षि दृष्टि की

मोहनी अब भी सद्योदृष्ट स्वप्न की भाँति मदमत्त कर रही है, हिमालय के कुंजर बिन्दू-शोणमर्जत्वक अब भी किन्नर वधुओं के अनङ्ग लेखों की याद लिया देते है ; अलका के अलक्तकांकित मार्ग अब भी कचोट रहे हैं, सचमुच ही वह समृद्धि का काल था। और उसी समृद्ध विलास के बीच-बीच से कुभा और सिन्धु के तट पर हूण-वाहिनियों का हुङ्कार और आर्यों का असफल प्रतिरोध; पंचनद से साकेत तक आतंक-ध्वस्त जनपद का विकल कोलाहल और फिर दुर्धर्ष-दमन में कृत-संकल्प विक्रमादित्य का भीम गर्जन, सभी साफ दीख रहा है, साफ सुनाई दे रहा है। मगध और अवन्ती की केन्द्रीय शक्ति और नागरिक समृद्धि सचमुच बेजोड़ थी। उस नागरिक के एक हाथ में तलवार थी और दूसरे में प्रिया के रभसालिगन से पीड़ित कालागुरु मंजरी की प्रतिच्छबि। उसकी एक आँख से आग बरसती थी और दूसरी से मदिरा। परन्तु उसके जनपद पंगु थे। पैरों और जनपदों का यह अन्तर निरन्तर बढ़ता गया। एक के लिये काव्य और काम-सूत्र लिखे गये, दूसरे के लिये पुराण और स्मृतियाँ।

एक विलासिता की ओर खिचता गया, दूसरा शास्त्र-वाक्यों की ओर। एक रस का आश्रय बनता गया, दूसरा मज़ाक और अवहेलना का विषय। खाई बढ़ती गई। हूणों ने इसका फायदा उठाया, शकों ने फायदा उठाया, तातारों ने फायदा उठाया, मुसलमानों ने फायदा उठाया, अंग्रेजोंने फायदा उठाया और खाई बढ़ती गई, बढ़ती ही गई, बढ़ती ही गई। आज वह छरहरे बदन का पठान युवक सहज ही कह गया कि 'मुसलमान भी नहीं, ईसाई भी नहीं तो क्या हिन्दू है।' मैं बार-बार सोच रहा हूँ। खाई क्या और भी बढ़ती नहीं जा रही है? मगर शास्त्रों को इससे कोई मतलब नहीं। और मुझ में इतना साहस नहीं कि इस प्रसंग पर नये सिरे से सिर खपाऊँ। जब दिमाग खाली हो और दिल भरा हुआ हो, तो इतना ही सोच लेना क्या गनीमत नहीं है?

# मेहमान से भगवान बचाये

**श्री गोपाल प्रसाद व्यास**

आजकल तो हाल कुछ ऐसा हो गया कि क्या घर और क्या बाहर कहीं कोई बात बनाये ही नहीं बनती। एक हमारे महामहिमामय पूर्वज थे कि उनके घर यदि कभी कोई अतिथि आ जाता तो समझते थे कि जैसे स्वयं भगवान् ने ही उन पर कृपा की है। परिवार भर में आनन्द का सागर हिलोर लेने लगता, दूर से ही अर्घ्य देते और पलक-पावड़े बिछाते, अतिथि महोदय का सुस्वागत किया जाता, भाँति-भाँति के पेय और पकवानों से उनकी रसना तृप्त की जाती। भाँति-भाँति के आनन्ददायक व्यवहार बरते जाते और इस प्रकार फूंक-फूंक कर कदम रखा जाता कि अतिथि को कहीं ठेस न लग जाय। यह समझिये कि सारा घर मेहमान के मुँह की ओर इस प्रकार ताकता रहता कि इससे पहले कि श्रीमान् कुछ कहें उनकी फरमाइश पूरी करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाय।

तो मैंने कहा कि एक तो वह युग था और एक आज है कि मेहमान का घर आना तो दूर, अगर कहीं किसी की चिट्ठी भी आ जाती है कि हमारा विचार दिल्ली देखने का है तो सच मानिये नाड़ी अपना नियत स्थान छोड़ देती है और दिल की धड़कन कम-से कम चार गुनी तो अवश्य ही

बढ़ जाती है। हम विश्वास भी नहीं कर पाते कि यह सज्जन सच लिख रहे हैं या मजाक कर रहे हैं। दिल अन्दर यह मानता है कि भगवान् यह मजाक ही हो और आप जानते ही हैं कि भगवान् महाशय हमेशा साथ नहीं दिया करते, इसलिये केवल भगवान् पर ही भरोसा न करके हम अपनी विशाल दाहिनी भुजा में जो पांच अँगुलियाँ हैं, उनमें स्वयं 'पार्कर' सम्भाल लेते हैं और मित्र को लिखते हैं –

"भाई तुम्हारे दिल्ली आने के निर्णय से हमें खुशी हुई। तुम्हें देखे बहुत दिन भी तो हो गये। आते तो बड़ा ही चित्त प्रसन्न होता। लेकिन मुझे दुःख है कि मैं स्वय तुम्हें यहां न आने की सलाह लिख रहा हूँ। मैं अपने बड़े-से-बड़े स्वार्थ के लिए भी तुम्हारा अहित नहीं सोच सकता। बात यह है कि वास्तव में यह मौसम दिल्ली आने का नहीं है। सफर में जो परेशानी होती है और रेलगाड़ियों में जो मुसीबत है वह तो दर-किनार, उसे तो तुम जब आओगे, खुद भुगतकर ही समझोगे, मगर इतनी दिक्कत के बाद जब दिल्ली पहुंचोगे तो यहां का हाल देखकर तुम्हें भारी निराशा होगी। एक तरफ चेचक चल रही है तो दूसरी तरफ हैजा फैल रहा है। न कहीं आने के और न कहीं जाने के। दिन भर घर से कैद पड़े और बाहर निकलो, तो आजकल न यहां कोई थियेट्रिकल कम्पनी है, न सिनेमाओं से अच्छे खेल ही चल रहे हैं। फिर आजकल समय भी जरा बाहर निकलने का कम ही है। मेरी तो तुमसे मिलने की बड़ी इच्छा है, मगर क्या बताऊँ परिस्थितियां मेरी भावनाओं को लाचार किये दे रही हैं और मैं तुम्हें यहां फिलहाल न आने की ही सलाह देने के लिए विवश हूँ।"

अकसर नेक आदमी हमारी इस सलाह को मान लेते हैं। पर भाई, पांचों अंगुलियां एक-सी तो होती नहीं, कुछ हमारे भी गुरु होते हैं कि बिना चिट्ठी-पत्री के ही दुर्भाग्य की तरह आ टपकते हैं।

जंगल में शेर की दहाड़ को सुनकर बछड़े के प्राण यों न सूख जाते होंगे जैसे मेहमान की नमस्ते से हमारे होश हिरन हो जाते हैं। मेहमान की

मुसीबत से बचने के लिए हमने कुछ कम पेशबंदियाँ नहीं की है, जैसे मकान छाँटकर उस जगह लिया है जहाँ न ताँगा पहुँच सकता है न रिक्शा, न पालकी, न टट्टू। गली के अन्दर गली इस कदर जाती है कि कोई भूलभुलैया बनाने वाला आकर मेरे मकान नक्शे को देखे कि यहाँ तक पहुँचना कितनी बहादुरी की बात है और फिर मकान तक पहुँचने से ही कोई हम तक पहुँच जाता हो ऐसी बात नहीं है। जीने के ऊपर जीना और कमरे के बाद कमरा इस कदर चला जाता है कि जब तक कोई म्युनिसिपैलिटी के भोंपू की सी आवाज में ही हमारे नाम का उच्चारण न करे, हमारे तन पर जूँ नहीं रेंग सकती। फिर सुनकर हम जवाब दे ही देंगे, इसकी क्या ग्यारंटी है? पहले लड़के को भेजेंगे कि देखो कौन है? कैसा है? फिर लड़के की रिपोर्ट पर श्रीमतीजी खिड़की से उझक- ताक पर मुआयना फरमायेंगी कि कहीं सामान तो साथ में नहीं हैं, बच्चों-कच्चों की पलटन तो अलग इन्तजार नहीं कर रही? जब श्रीमतीजी सिगनल दे देती हैं और हम समझते हैं कि 'लाइन क्लियर' है तो पहले हम तिखने के ऊपर से झाँकते हैं और जब तक बहुत ही हानि-नुकसान का प्रश्न न हो, हम ९९ प्रतिशत कहलवा देते हैं कि बाबूजी बाहर गये हैं।

पर आप समझिये कि सारी अकल का ठेका हमने ही थोड़ा ले रक्खा है! भगवान् ने एक से एक विचित्र खोपड़ियाँ ज्ञानी महापुरुष, इस धरा-धाम पर अवतीर्ण किये हैं। लोग यह जानकर कि किले में यानि घर में तो हम अजेय हैं, हम पर बाहर सड़क पर, यानी खुले में हमला करते हैं। दफ्तर में सीधे पहुँचते हैं।

लेकिन इससे पहले कि वह हमसे कुछ कहें हमने भी कुछ गुर याद कर रक्खे हैं। हाथ मिलाते ही हम उससे प्रश्न करते हैं कि कहिए कहाँ टिके हैं? और तत्काल ही उनके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही दूसरा वार किया जाता है, कि कब जा रहे हैं। अगर इन दो तीरों से भी कोई बहादुर बच जाता है, तो फिर हम अपना अमोघ ब्रह्मास्त्र चलाते हैं –" बोलिये नाश्ता-वास्ता तो कर आये हैं न? "

मानना पड़ेगा कि दुनिया में अभी शरीफ आदमियों की कमी नहीं है। अगर भले आदमी न हों तो धरती-आसमान कैसे टिके रह सकते हैं? तो, मैंने कहा, हमारे इन प्रश्नों को सुनकर विरला ही आदमी हमारे यहाँ टिकने की हिम्मत कर सकता है? अकसर लोग घबराकर कह ही तो जाते हैं कि जी, सब कुछ ठीक है, आप तकलीफ न करें।

लेकिन, उनके लिए क्या किया जाय जिन्हें हमने गलती से, अनजान में ही, बचपन में दोस्त मान लिया था। जो हमारा रौब नहीं समझते' प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठा नहीं मानते और हमारी मुसीबत में हँस-हँसकर मजा लेते हैं। असल में हाथ हम उन्हीं लोगों के आते हैं, जो न चिट्ठी देते हैं, न जिन्हें हमसे कुछ पूछने की जरूरत है और हम चाहे पाताल में छिपकर क्यों न बैठ जायं, वे हमारी खोज निकालने में एकदम शैतान की तरह समर्थ हैं। आपको तो पता चलेगा पीछे, इससे पहले ही आपकी बैठक पर सदलबल उनका कब्जा हो चुका होगा। उन्हें रोक भी कौन सकता है? कम्बख्त, हमारे घर में घुसते ही बच्चों को अपना भतीजा बना लेंगे, हमारी माँ के पहले ही झुककर चरण छू लेंगे और नौकर को इस अधिकार से हुक्म देंगे गोया जैसे वह तनख्वाह हर महीने उन्हीं से पाता है।

उन लोगों का इलाज, सच पूछिये हमारे पास नहीं, इनकी दवा दर-असल हमारी देवीजी के पास है। मेहमान के घर में आते वे 'वह' रूप धारण करती हैं कि आखिर यह हमारे ही बच्चे की माँ है या कोई और ही है।

अक्सर मेहमान के घर दाखिल होते ही वे बीमार हो जाया करती हैं और उनके स्वभाव में रूखापन भी अधिक आ जाता है। औसतन उन दिनों हमारे घर में बच्चे ज्यादा पिटा करते हैं, बर्तन अधिक टूटा करते हैं। और दाल-शाक में मिर्च अपनी उपस्थिति ज़ोर-जोर से सूचित किया करती हैं। अक्सर महरी को इन दिनों जवाब दे दिया जाता है, और हमारी श्रीमतीजी

जो आये दिन घर की देहली के बाहर पैर तक नहीं निकालतीं, इन दिनों तीन-चार, चार-चार घंटे सहेलियों के यहाँ जाकर ताश खेलने में अपने बेकार समय का सदुपयोग किया करती हैं।

हमारे घर में वह दृश्य देखने लायक होता है कि जब मेहमान नहाने के लिये लोटा माँगते हैं, तो उन्हें कटोरी मिलती है। लगाने को साबुन माँगते हैं, तो कपड़ा धोने का डंडा पकड़ा दिया जाता है, खुशबूदार तेल माँगते हैं तो सरसों के तेल की बोतल तुरन्त बढ़ा दी जाती है। कहते हैं कि भगवान शिव समुद्र में से निकले विष को कंठ में उतार गये थे, लेकिन वे दिल्ली में हमारे मेहमान बन कर आये, मेरी चुनौती है कि विष तो दूर, वे हमारे यहाँ की अमृतोपम दाल तक को गले के नीचे नहीं उतार सकते, न जाने किस बजरी से छान-छानकर श्रीमती इसमें मेहमान के लिये वह कुट-कियाँ मिलाती हैं कि खाने वाले को छठी का दूध याद आ जाता है। और आगे से मेरे यहां आना तो दरकिनार, भला आदमी दिल्ली की तरफ पैर करके सोने की हिम्मत भी नहीं करता।

आप इसे सुनकर शायद मुझे और मेरी श्रीमतीजी को कोसेंगे और कहेंगे कि हम भी क्या मनहूस आदमी हैं जो मेहमान से यों बिदकते हैं। यह तो असमाजिकता है। ऐसा आदमी तो समाज में रहने लायक नहीं !

मैं आपसे विनम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूँ कि अपनी सामाजिकता आप अपने तक ही रहने दे। मैं हरगिज भी इन बातों में आने वाला आसामी नहीं हूँ।

हाँ, मैं यह जानता हूँ कि मेहमानों की खातिर करके लोग बड़े-ऊँचे पदों पर पहुँचे गये हैं। अपनी मेहमान-नवाजी के कारण ही आज बहुत से साधारण आदमी नेता बने हुए हैं, लोगों को चाय पिला-पिलाकर वकीलों ने अपनी वकालत जमा ली है, डॉक्टरों की आमदनी बढ़ गयी है, लेखकों

4

की रचनाएँ सम्पादकों को पसन्द आने लगी हैं। यह नहीं बेकार आदमी बा-कार हो गये हैं, ठेकेदारों को दूने ठेके मिलने लगे हैं। और कहाँ तक कहूँ चोर बाजार करने वालों ने भी अपनी मिलनसारी और मेहमाननवाजी में लाखों के वारे-न्यारे कर डाले हैं।

तो क्या आप समझते हैं कि मेरे मन में ऐसे कोई अरमान नहीं हैं?

हैं, जरूर हैं। पर भाई मैं कुछ अपनी और कुछ अपनी उनकी सुन-हली आदतों से मजबूर हूँ। हाँ ऐसे नुस्खे की तलाश में अवश्य हूँ जिससे बिना दैहिक और आर्थिक कष्ट उठाये, मेहमान की जाति का-पूरा-पूरा फायदा उठाया जा सके। देखो, भगवान् कभी तो सुनेंगे ही।

# दिग्भ्रमित

**इब्राहीम शरीफ**

वह कुछ जल्दी में था। उसे रात के सवा नौ बजेवाली गाड़ी पकड़नी थी और इस बीच एक आदमी से मिल भी लेना था। उसने उसी उतावली में जेब में हाथ डालकर मुड़ा-तुड़ा वह कागज का पुर्जा निकाला, जिस पर उस आदमी का पता लिखा हुआ था। वह चलते-चलते थोड़ी देर तक ध्यान से पता पढ़ता रहा और इस ख्याल को दुबारा दिमाग में कौंधने के साथ ही कि उसे आज हर हालत में गाड़ी पकड़ ही लेनी चाहिए, उसकी चाल अपने-आप तेज हो गयी। उसे लगा कि रात के सवा नौ बजे तक उसे इतने ज्यादा काम करने हैं कि रत्तीभर भी आलस या ढिलाई दिखाने पर उसका सब-कुछ चौपट हो जायेगा, क्योंकि कल सुबह तक दिल्ली पहुँचना उसके लिए बेहद जरूरी था। अगर किसी भी हालत में कल सुबह तक वह दिल्ली पहुँच नहीं पायेगा, तो उसका सारा जीवन नष्ट होने वाला था और दिल्ली पहुंचने से पहले इस शहर के उस आदमी से मिल लेना भी जरूरी था। यह सब सोचने के साथ ही उसमें उतावली बढ़ गयी और वह समय जानने के लिए व्यग्र हो उठा।

उसके हाथ में घड़ी नहीं थी और इस बार भी घड़ी के न होने की वजह से उसे बेहद मलाल हो आया। वह जानता था कि उस जैसे आदमी

के पास समय देखने के लिए घड़ी होना निहायत जरूरी है, लेकिन वह अपनी अब तक की जिन्दगी में बड़ी जुगत के साथ की गयी कोशिश के बावजूद घड़ी खरीद नहीं पाया था। हालाँकि इस सोच के साथ ही उस के भीतर बहुत रंज हो आया, लेकिन अपनी व्यस्तता को अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता के साथ भीतर-ही-भीतर उजागर करते हुए वह तत्काल उस चिन्ता को परे फेंकने लगा। साथ ही यह सोचकर वह अपने-आपको ढाढ़स देने लगा कि कल सफलतापूर्वक अगर वह दिल्ली पहुँच पायेगा, तो बहुत जल्दी ही एक बढ़िया घड़ी खरीदने की स्थिति में वह अपने-आपको पायेगा।

इतना कुछ सोचने के बाद भी समय जानने की ललक कम नहीं हुई और सड़क पर चलते-चलते ही वह लोगों की कलाइयों पर दृष्टि डालने लगा। उसके बहुत निकट से ही एक आदमी जा रहा था, जिसके हाथ में घड़ी बँधी हुई थी, लेकिन उस आदमी के बढ़िया लिबास और रोबदार चाल को देखकर उसे समय पूछने की हिम्मत नहीं पड़ी। उसे भीतर से कहीं कुछ डर-सा महसूस होने लगा कि वह आदमी, जो शक्ल से बहुत बड़ा लग रहा था, इसके समय पूछने के कारण बिगड़ न उठे। उसके लिए यह शहर नया था और सिर्फ चौबीस घण्टों का ही उसका इस शहर के साथ परिचय था। इसलिए यहाँ के लोगों के स्वभाव और व्यवहार के बारे में उसे कोई ज्ञान नहीं था। इसी कारण उस आदमी से समय पूछने की उसे हिम्मत नहीं पड़ी और वह समय जानने की अपनी बेहद सख्त जरूरत को भीतर-ही-भीतर दबाते हुए आगे बढ़ गया। थोड़ी दूर और चलने के बाद उसने फिर घड़ीवालों की खोज शुरू कर दी। कुछ दूर पर मामूली कपड़े पहने हुए एक आदमी आता हुआ नजर आया, जिसकी कलाई पर घड़ी बँधी हुई थी। उसने उस आदमी से समय पूछने की अन्दर-ही-अन्दर हिम्मत बटोरी और उसके पास पहुँचते ही झट से पूछा बैठा – "भाई साहब, आपकी घड़ी में कै बजे हैं ? " उस आदमी ने जैसे चौंकते हुए उसकी तरफ देखा और फिर घड़ी पर नजर डाली और बड़े उपेक्षा-भरे लहजे में कुछ फुसफुसाता हुआ आगे बढ़ गया। उसकी समझ में नहीं आया

कि उस आदमी ने ऐसा क्यों किया है। क्षणभर वहीं रुककर उसने जाते हुए उस आदमी की तरफ देखा और फिर लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ आगे बढ़ने लगा।

थोड़ी दूर जाने के बाद सामने से आता हुआ उसे एक और ऐसा आदमी दिखाई दिया, जिसके पास घड़ी थी। उसने उस आदमी को रोकते हुए बड़े नम्र स्वर में पूछा – "माफ कीजिए, आपकी घड़ी क्या बजा रही है?" उस आदमी ने घड़ी की ओर, फिर उसकी तरफ तरफ देखते हुए कहा– "आठ बजने में कोई दस मिनट बाकी हैं।"

यह सुनते ही वह ऐसे उछल पड़ा मानो अचानक उसके पैर अंगारों पर पड़ गये हों और वह ताप पैरों से होता हुआ उसके दिमाग की नस-नस को गरमा गया हो। जैसे लगभग दौड़ते हुए वह उँगलियों पर बचे हुए समय का हिसाब लगाने लगा।

ले-देकर बमुशिकल उसके पास एक ही घंटा रह गया था। उसे लगा कि इतने कम समय में उस आदमी से मिलना और गाड़ी के समय तक स्टेशन पहुँचना मुश्किल है। और खासकर तब जब वह इस शहर से अपरिचित और यहाँ के गली-कूचों से नावाकिफ हो।

यह सब सोचते-ही-सोचते उसे ध्यान आया कि घबराहट में इसी तरह चलते चले जाने से कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि वह जानता था बड़े शहरों में बिना किसी रुकावट के आदमी लगातार घण्टों गली-कूचों में आसानी से भटक सकता है। उसने चलते-ही-चलते भीतर कुछ हिम्मत बांधी और अपने पास से गुजरते हुए एक आदमी को रोकते हुए पूछा– "भाई साहब, यह टैगोर लेन कहाँ पर है?" वह आदमी बोला –"टैगोर लेन विवेकानन्द रोड के पास है।" और वह आगे बढ़ गया। उसे लगा कि किसी ने उसे एक

अन्धकार से उठाकर दूसरे अन्धकार में पटक दिया है और अचानक उसके कन्धों पर दोनों अन्धकार सवार हो गये हैं। अब उसके लिए 'टैगोर लेन' का पता लगाना जितना कठिन था उतना ही कठिन था विवेकानन्द रोड का सुराग लगाना। क्षण-भर वह जैसे थम गया और मन-ही-मन निर्णय करने लगा कि इन दोनों में किस का पता लगाना आसान और कारगर होगा! उसकी समझ में कुछ नहीं आया और उत्सुक कदमों से आगे बढ़ते हुए उसने एक और आदमी से पूछा—"देखिए, क्या आप बता सकेंगे कि टैगोर लेन कहाँ है?" उस आदमी ने उसकी तरफ ध्यान से देखा और नकारात्मक स्वर में बोला—"माफ कीजिए, मैं नहीं जानता हूँ..."

"विवकानन्द रोड ?"

उस आदमी ने माथे पर बल डालते हुए जैसे कुछ सोचते हुए कहा—"अरे... विवेकानन्द रोड तो जीवन सिनेमा के पासवाली नुक्कड़ से ही शुरू होती है। आप सीधे जीवन सिनेमा का रास्ता ले लीजिए।"

उसे लगा कि वह और गहरे अंधेरे में फेंक दिया गया है, क्योंकि वह इनमें से किसी जगह को नहीं जानता था। साथ ही उसे एहसास होने लगा कि इस पूछ-ताछ के बीच से समय सांप की तरह तेजी से सरकता जा रहा है। वह सोचने लगा कि अगर वह जल्दी नहीं करेगा, तो सवा नौ बजेवाली गाड़ी छूट जायगी और वह इसी कारण जीवन-भर किसी काम का नहीं रह जायगा।

उसने उतावली में पास से गुजरते हुए एक और आदमी को लगभग बाँह पकड़कर थामते हुए पूछा—"आप दया करके यह बतायेंगे कि विवेकानन्द रोड के लिए मुझ किधर जाना चाहिए? मैं बहुत जल्दी में हूँ, और इसी वक्त मेरा वहाँ पहुँचना बहुत जरूरी है।"

उस आदमी ने जैसे उनकी परेशानी पर दया दिखाते हुए कहा—"देखिए, ऐसा कीजिए, आप सीधे जाइए... थोड़ी दूर चलने के बाद

दाहिनी तरफ एक गली आयेगी... उसे छोड़ दीजिए... और आगे बढ़िए कुछ और दूर चलने के बाद बायीं तरफ एक और छोटी-सी गली पड़ेगी... उसे भी छोड़ दीजिए... सीधे चले चलिए... कोई दो सौ गज के बा— आपको दो सड़कें मिलेंगी, एक बिल्कुल दाहिनी तरफ और एक उस सड़क की कुछ बायीं तरफ...आप उसी सड़क को पकड़ लीजिए और वहाँ से सीधे जायेंगे, तो कोई सौ गज की दूरी पर एक चौराहा पड़ेगा, बस उस चौरा पर किसी से भी पूछ लीजिए, आपको बता देगा।"

यह सब सुनकर जैसे उसका सिर चकराने लगा और उसे महसूस होने लगा कि उसकी आँखों के सामने जैसे अन्धकार घिर गया है। अब तक उस आदमी ने उसे जो कुछ बताया था, उसकी समझ में कुछ नहीं आया, और उल्टे उसकी समस्या और उलझ गयी। उसने सोचा कि आज वह किसी भी हालत में उस आदमी से नहीं मिल पायेगा और न ही समय पर स्टेशन पहुँच पायेगा। वह इसी डर और परेशानी में फँसा आगे बढ़ने लगा।

थोड़ी दूर और चलने के बाद उस आदमी के बताये हुए सारे रास्ते उसे भूल गये और ऊपर से यह सोचकर परेशानी कुछ और बढ़ गयी कि उसने अनजाने कुछ गलियाँ पीछे ही छोड़ न दी हों। उसने मुड़कर पीछे देखा, लेकिन उसे कोई गली नजर नहीं आयी, सिवा मोटरों, कारों साइकिलों और पैदल चलते हुए लोगों की अथाह भीड़ के।

एक बार फिर उसके मन में समय जानने की उत्सुकता जागी। एक आदमी से पूछने पर पता चला कि आठ बजकर पच्चीस मिनट हो गये हैं। यह सुनते ही उसकी रगों में जैसे हजारों बिच्छुओं का जहर दौड़ने लगा। वह सोचने लगा कि अब उसके पास आधे घण्टे से थोड़ा ज्यादा जो समय रह गया है, उसमें या तो स्टेशन जाया जा सकता है या उस आदमी से मिला जा सकता है। क्षण-भर सोचने के बाद उसने तय कर लिया कि उस आदमी

से नहीं मिलेगा और दिल्ली जाकर कल सुबह खुद ही अपने भाग्य की परीक्षा कर लेगा। इस निर्णय के साथ वह पास की पान की दूकान पर पहुँचा और व्यग्र स्वर में दूकानदार से पूछा—"भाई साहब, यहाँ से स्टेशन पहुँचने का सबसे नजदीक का रास्ता आप बता सकते हैं?"

दूकानदार ने बताया—"आप सीधे जाइए और बायीं तरफ की सड़क पर मुड़ जाइए। वहाँ से कोई दो सौ गज चलने पर स्टेशन आयेगा।" उसने मन-ही-मन दूकानदार को धन्यवाद दिया और लम्बे-लम्बे डग भरता वहाँ से स्टेशन की तरफ चल दिया।

थोड़ी दूर जाने के बाद उसे बायीं तरफ सड़क नजर आयी और वह यंत्रवत् उस सड़क पर मुड़ गया। वह वहाँ से कुछ ही दूर चला होगा कि उसे स्टेशन की तरफ जानेवाली सड़क को काटती हुई सड़क पर से पूरे जोश के साथ शोर-शराबा करता हुआ एक जुलूस आता हुआ नजर आया। वह उसी उतावली में उस जुलूस के पास पहुँच गया।

उसने देखा कि जुलूस की दूसरी तरफ बहुत पास ही में स्टेशन नजर आ रहा था। वह मन-ही-मन खुश हो गया और जुलूस के और निकट पहुँच गया। जुलूस सड़क के दायें-बायें दो कतारों में बँटा हुआ था। लोगों के हाथों में रंग-बिरंगी छोटी-छोटी झण्डियां, तरह-तरह के सस्ते बाजे और बड़े-बड़े बाँस के टुकड़ों पर बँधे हुए कपड़े के 'बैनर' थे। सभी लोग पूरे जोश के साथ नारे लगा रहे थे। और दोनों तरफ थोड़ी-थोड़ी दूर पर हाथों में लाठियां लिये पुलिस के सिपाही चल रहे थे।

वह थोड़ी दूर खड़ा होकर सारा तमाशा देखता रहा, इस प्रतीक्षा और उत्सुकता के साथ कि जुलूस अभी खत्म होगा और वह लपककर स्टेशन पहुँच जायेगा। लेकिन जुलूस आशा से अधिक लम्बा था। उसने सोचा कि वह जुलूस के खत्म होने की प्रतीक्षा करता रहेगा, तो समय हो जायेगा और गाड़ी निकल जायेगी। इसलिए उसने हिम्मत की और जुलूस को काटकर आगे

बढ़ने की कोशिश की, लेकिन बीच ही में उसे एक पुलीस के सिपाही ने बाँह से पकड़ लिया और गुर्राते हुए बोला–"क्यों, मरने का ख्याल है,... देखते नहीं हो कि कितनी गरमी के साथ ये लोग आगे बढ़ रहे हैं... रुक जाओ... जब जुलूस खत्म हो जायेगा, तब जहाँ मरजी चले जाना।"

वह मन मारकर वहीं खड़ा हो गया। उसकी समझ में नहीं आया कि किस तरह स्टेशन पहुँचा जाये। उसने ललचायी निगाहों से पास ही में दिखायी पड़ते हुए स्टेशन की तरफ देखा और जुलूस का मजा लेते हुए एक आदमी के पास पहुँचकर पूछा– "देखिए, यह जुलूस और कितना लम्बा होगा?"

उस आदमी ने मुस्कुराते हुए उसकी तरफ देखा और व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहा– "क्यों, क्या तुम्हारा इसके पीछे लग जाने का इरादा है?" उसे साफ लगा कि वह आदमी उसका मजाक उड़ा रहा है। वह वहाँ से हटकर एक और आदमी के पास गया और कुछ-कुछ विवश स्वर में पूछा – "भाई साहब, यह जुलूस क्या बला है?"

उस आदमी ने उसकी तरफ देखकर ठहाका लगाया और जैसे समझाते हुए बोला– "अरे भाई, मतदान के लिए हफ्ता-भर ही रह गया है... इसलिए तो सारी पार्टियाँ एक साथ उमड़ पड़ी हैं?"

उसने देखा, जुलूस खत्म ही नहीं हो रहा था। तरह-तरह के स्त्री-पुरुष हौले-हौले आवाज़ें कसते और कसी हुई मुट्ठियाँ और झण्डियाँ हवा में उछालते हुए आगे बढे रहे थे। वह निर्जीव-सा खड़ा होकर शोर सुनने लगा। जुलूस का शोर- शराबा इतना अधिक था कि कोई बात स्पष्ट समझ में नहीं आ रही थी। जुड़ा-जुड़ा होने पर भी वह जुलूस कई छोटी-छोटी टुकड़ियों में बँटा हुआ था। हर टुकड़ी के नारे अलग थे, रंग-ढंग अलग था। किसी टुकड़ी को लोग तालियाँ बजा-बजाकर नाचते हुए चल रहे थे, तो किसी टुकड़ी के लोग कुछ खास अन्दाज में

नारे लगा रहे थे। किसी टुकड़ी की स्त्रियां कुछ गाती हुई-सी चल रही थीं तो किसी टुकड़ी के छोकरे कुछ अजीब लय के साथ पैरों की ताल मिलाते हुए उचक-उचककर चल रहे थे।

वह खड़ा-खड़ा अपने अब तक के जीवन के विगत की जुगाली करने लगा। उसे याद नहीं आ रहा था कि उसने अब तक इतना भारी जुलूस कभी देखा हो। हालाँकि उसके गाँव में भी कभी-कभी और खासकर पंचायत के चुनाव के अवसर पर जुलूस निकलते थे, लेकिन ले-देकर सौ-दो सौ लोगों से ज्यादा नहीं होते थे। इसीलिए इतने लम्बे और जोशीले जुलूस को देखकर उसकी आंखें विस्फारित हो गयीं। समय पर स्टेशन न पहुँच पाने की परेशानी के बावजूद वह काफी देर तक उसी शोर-शराबे में घिरा पत्थर की तरह रह गया।

एकाएक जैसे उसे धक्का-सा लगा और वह जुलूस के माहौल से अपने-आपको दूर फेंकते हुए बड़ी क्षुब्ध दृष्टि से स्टेशन की तरफ देखने लगा। जुलूस खत्म होने का नाम ही नहीं ले रहा था और उसकी आशा हौले-हौले घुलने लग गयी कि वह किसी भी बूते समय पर स्टेशन पहुँच नहीं पायेगा। उसने घबराकर चारों तरफ दृष्टि डाली, पास ही खड़े एक और आदमी के पास लपककर पहुँचा और घबराये हुए स्वर में पूछा – "देखिए भाई साहब, यह जुलूस तो खत्म ही नहीं हो रहा... मुझे सवा नौ बजेवाली गाड़ी पकड़नी है, मैं स्टेशन कैसे पहुँचूं? क्या कोई और रास्ता नहीं है?"

उस आदमी ने जैसे सहानुभूति दिखाते हुए कहा – "यह जुलूस तो अब खत्म नहीं होगा भाई, यह पार्टि आसपास की पच्चीस जगहों से किराये के लोगों को लाकर अपनी शक्ति प्रदर्शित कर रही है... यूँ समझो, यह कोई और दो-तीन घण्टों तक चलता ही होगा।" फिर उस आदमी ने अपनी घड़ी देखी और उस पर तरस खाते हुए कहा– "अरे भाई, अब कैसे गाड़ी पकड़ोगे, गाड़ी तो कभी की छूट गयी होगी, आखिर तुम्हें जाना कहाँ है?"

"दिल्ली..."

"दिल्ली जाओगे, फिर तो घबराने की कोई बात नहीं। साढ़े ग्यारह बजे एक पैसेंजर है, उसी से चले जाना।"

"अब कै बजे हैं?"

"अब तो साढ़े-नौ बजे हैं। ऐसा करो, इसी सड़क से, जिधर से तुम आये हो, वापस जाने पर बहुत पास में ही एक चौराहा पड़ेगा, वहाँ किसी से पूछ लेना कि लोहामण्डी होते हुए स्टेशन की तरफ जानेवाला रास्ता कौन-सा है... बस, वहाँ से आधा मील चलोगे, तो आराम से स्टेशन पहुँच जाओगे... इस जुलूस पर भरोसा मत करो। जिसने इतने सारे... हजारों... लोगों को बाँध रखा है, वह तुम्हारा भी उल्लू खींच दे कोई बड़ी बात नहीं... अपने देश के लीडरों का क्या भरोसा...।"

"यही ठीक है भाई साहब, मैं उसी रास्ते से ही चला जाता हूँ।"

वह उतावली में पीछे मुड़ा और चौराहे की तरफ चलने लगा। चौराहे पर पहुँचने के बाद उसने एक से नहीं कई आदमियों से लोहामण्डी से होते हुए स्टेशन जाने का रास्ता पूछा और मन में विश्वास हो आने के बाद लोगों के बताये हुए रास्ते की तरफ चल पड़ा। चलते हुए वह बार-बार इस निर्णय को मन-ही-मन दोहराने लगा कि हर हालत में उसे साढ़े ग्यारह बजेवाली गाड़ी से दिल्ली के लिए रवाना हो ही जाना है। वह सोचने लगा, वरना जो नुकसान होगा, उसके लिए उसे आजीवन पछताना पड़ेगा। इस ख्याल के साथ ही उसकी चाल अपने आप तेज हो गयी और वह लगभग भागता हुआ-सा चलने लगा।

उसने कोई डढ़े फर्लांग ही तय किया था कि उसे वातावरण में गूंजती हुई हजारों स्वरों की मिली-जुली आवाज सुनाई पड़ी। उसने सोचा कि अभी कुछ देर पहले देखे हुए जुलूस के नारे उसके दिमाग में अब भी शायद गूंज रहे हैं, लेकिन जो आवाज उसके कानों से टकराने लगी थी, वह और-

और स्पष्ट होती जा रही थी, ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ रहा था। उसने उस पागल आवाज को परे ढकेलते हुए स्टेशन पहुँच जाने की व्यग्रता में कोई पचास कदम की दूरी तय की होगी कि अप्रत्याशित रूप से उसकी दृष्टि कुछ ही दूर की सड़क पर आगे बढ़ते हुए जुलूस पर पड़ गयी। जैसे ही उसने इस नये जुलूस की पंक्ति को देखा, उसका कलेजा धक् से रह गया। उसे लगा कि भीड़ का एक जबर्दस्त अजगर पिछले रास्ते को छोड़कर अचानक इस रास्ते पर आ गया है और किसी भी हालत में उसे स्टेशन न पहुँचने देने की साजिश में लग गया है। इस ख्याल के साथ ही जैसे उसका सारा बदन पसीने से तर-बतर हो गया और उसे लगा कि उसके शरीर के जर्रे-जर्रे से जैसे शक्ति चूकर बाहर बह गयी है। वह पैरों को घसीटते हुए आगे बढ़ने लगा।

थोड़ी दूर चलने के बाद उसने साफ देखा कि एक और जुलूस उसके रास्ते को काटता हुआ आगे बढ़ रहा है। वह जैसे-तैसे उस जुलूस के पास पहुँचा और नीचे से ऊपर तक कांपता हुआ उसे विस्फारित निगाहों से देखने लगा। इस बार भी जुलूस काफी तगड़ा था। लोगों का रेला जैसे शहर को चरीता हुआ सरक रहा था। पिछले जुलूस की तुलना में उसने साफ देखा कि इस जुलूस के लोगों में ज्यादा आक्रोश था, इसीलिए उनके नारों से जैसे चिनगारियाँ फूट रही थीं। यूं देखने में उस जुलूस का पूरा समाँ कुछ ज्यादा ही डरावाना लग रहा था। इस जुलूस के लोग भी अपेक्षाकृत ज्यादा दरिद्र और नंग-धडंग लग रहे थे।

उसकी समझ में नहीं आया कि उसे क्या करना चाहिए। उसे पता था कि जूलूस को काटकर जाना असम्भव है और खासकर इस जुलूस को, जिसकी एक-एक चीख पूरे आक्रोश से भरी-पूरी है। वह अन्दर ही अन्दर हिल गया और लड़खड़ाते हुए पास के एक आदमी के पास पहुँच कर रुआँसे स्वर में पूछा– "देखिए, मुझे बहुत जरूरी काम से दिल्ली जाना है, क्या इस जुलूस से बच निकलने की कोई जुगत है?"

जुलूस का आनन्द लेते हुए उस आदमी ने कुछ व्यंग्य-भरे स्वर में कहा– "अरे भाई, ये भीं तो दिल्ली जा रहे हैं ...."

"लेकिन भाई साहब, इस रफ्तार से जायेंगे, तो ये दिल्ली कब पहुँच पायेंगे... मुझे तो हर हालत में कल सवेरे वहाँ पहुँचना है..."

"ऐसा मत कहो, जुलूस में से किसी न तुम्हारी बात सुन ली, तो तुम्हारा भुर्ता बना देगा। देखते नहीं हो, दिल्ली ही पहुंचने की उतावली में ये लोग पास-पड़ोस के सारे गाँवों के सभी भूखे-नंगे लोगों को पकड़ लाये हैं।"

उसकी समझ में नहीं आया कि वह आदमी उससे क्या कहना चाहता है! खीझकर वह वहाँ से जैसे ही हटने लगा कि उस आदमी ने एक जोर का ठहाका लगाया। ठहाका सुनने के बाद उसके बदन में आग लग गयी। हाथों के पंजे जैसे जलने लग गये। उसकी इच्छा हुई कि उस आदमी को ही नही, उस जुलूस में हिस्सा लेनेवाले हर आदमी को खींचकर इतने धौल जमाये कि सबके सब नीचे से ऊपर तक टूटकर बिखर जायें, फिर भी उसने अपने-आपको बाँधा और चुपचाप थोड़ी दूर पर खड़े हुए एक और आदमी के पास पहुँच गया। उसने उस आदमी से गिड़गिड़ाते हुए स्वर में पूछा– "दया करके आप यह बता सकेंगे कि स्टेशन पहुँचने का कोई और रास्ता है?"

"हाँ, एक यह है, जिस पर जुलूस जा रहा है और इसके बिल्कुल पीछे एक और है... वह ज्यादा नजदीक पड़ेगा उधर से ही चले जाओ..."

"लेकिन उस रास्ते पर भी इसी तरह का जुलूस जा रहा है, क्या और कोई रास्ता है?"

उस आदमी ने थोड़ी देर सोचने के बाद कहा–"और कोई नहीं है। कोई होगा भी तो गलियों में घूम-फिरकर जाना पड़ेगा।"

"क्या आप बता सकते हैं, यह जुलूस और कितनी देर तक चलेगा?"

"भाई, कैसे बताया जाये, यह अभी-अभी तो शुरू हुआ है।"

उसकी यह बात सुन कर उसे फिर से गुस्सा आ गया। उसने कुछ तीखे स्वर में पूछा– "आखिर शहर में ये जुलूस किस बात के हो गये हैं, साला कहीं आने-जाने का रास्ता नहीं छूटा है इनसे।"

"अरे भाई, चुनाव के दिन जो पास आ रहे हैं!"

"चुनाव के दिन पास आ गये तो क्या हुआ, लोगों के आराम का भी तो ख्याल करना चाहिए।"

"क्या बातें करते हो यार! लोगों के आराम के लिए ही तो ये लोग इतने बावले हो रहे हैं।"

"खाक लोगों का आराम... जो लोग कहीं आने-जानेवाले जरूरत-मन्दों को आगे बढ़ने नहीं देते, ये गद्दी पर बैठकर आग नहीं लगा देंगे!"

"अब तुम जो भी समझो, इनसे छुटकारा कहाँ है?"

"हाँ, छुटकारा तो तभी मिलेगा, जब इन सबों की खाल उधेड़ी जायेगी।"

"उधेड़े कौन! देखते नहीं, कैसे एक-दूसरे को गाली-गलौज दे रहे हैं, देखे जाओ क्या होता है!" उसे लगा कि उसके साथ बातें करनेवाला आदमी भी उतना ही त्रस्त और क्षुब्ध है, जितना कि वह खुद।

वह थोड़ी देर वहीं गुमसुम खड़ा हुआ अपने को तौलता रहा कि उस पूरे-के-पूरे जुलूस को दबोचकर रगड़ देने के लिए वह पर्याप्त होगा कि नहीं? उसे लगा कि वह कहीं से इतना पोला हो गया है कि जुलूस तो जुलूस, वह खुद को भी रगड़ने की हालत में नहीं है। इस एहसास ने जैसे फिर से उसके भीतर आग घोल दी। वह कुछ और तीखे स्वर में अपने-आप बड़बड़ाया– "इन जुलूसों की वजह से शायद मैं साढ़े ग्यारह वाली गाड़ी से भी नहीं जा पाऊँगा, अब क्या किया जाये।" उसने देखा, उसके पासवाला आदमी इस बीच चला गया था। उसे महसूस होने लगा कि वह फिर से अकेला ही

रह गया है। कुछ विवश लावा उसके भीतर बहने लगा। उसने आसपास दृष्टि दौड़ायी और दूर पर खड़े हुए एक और आदमी के पास पहुँचकर पूछा— "क्या समय हुआ है ?"

"कोई ग्यारह बजनेवाले हैं ?"

यह सुनते ही उसे फिर से कुछ ऐसा ही एहसास हुआ कि पास से गुजरते हुए जुलूस का हर आदमी उसे नोचने के लिए लपकने की तैयारी कर रहा है। वह सोचने लगा, अगर वह उन जाहिलों की पकड़ में आ जायेगा, तो किसी भी हालत में स्टेशन नहीं पहुँच पायेगा, जिससे उसका दिल्ली जाना हमेशा के लिए असम्भव हो जायेगा।

यह सब सोचते हुए उसे खुद पता नहीं चला कि उसमें अथाह भय भर गया है या असीम आक्रोश ! उसने मन-ही-मन कुछ निर्णय कर लिया और झट से पीछे की ओर मुड़कर बेतहाशा भागने लगा। भागते हुए उसके मन में एक ही ललक लोट-पोट हो रही थी कि हर हालत में गाड़ी छूटने के पहले उसे स्टशन पहुँच ही जाना चाहिए।

भागते हुए जैसे ही वह पहलेवाले जुलूस की सड़क के पास पहुँचा कि अचानक उसी शोर ने उसे फिर से अपने भीतर समेट लिया। जुलूस अब तक चल रहा था।

भागते ही भागते वह निर्णय नहीं कर पाया कि जुलूस से टकराने से अपने-आपको रोक पायेगा कि नहीं !

# बरात की वापसी

हरिशंकर परसाई

बरात में जाना कई कारणों से टालता हूं। मंगल कार्यों में हम जैसे चढ़ी उम्र के कुंवारों का जाना अपशकुन है। महेश बाबू का कहना है, हमें मंगल कार्यों से विधवाओं की तरह ही दूर रहना चाहिए। किसीका अमंगल अपने कारण क्यों हो! उन्हें पछतावा है कि तीन साल पहले जिनकी शादी में वह गए थे, उनकी तलाक की स्थिति पैदा हो गई है। उनकी यह शोध है कि महाभारत युद्ध न होता, अगर भीष्म की शादी हो गई होती। और अगर कृष्ण मेनन की शादी हो गई होती, तो चीन हमला न करता।

सारे युद्ध प्रौढ़ कुंवारों के अहं की तुष्टि के लिए होते हैं। १९४८ में तेलंगाना में किसानों का सशस्त्र विद्रोह देश के वरिष्ट कुंवारे विनोबा भावे के अहं की तुष्टि के लिए हुआ था। उनका अहं भूदान के रूप में तुष्ट हुआ।

अपने पुत्र की सफल बरात से प्रसन्न मायाराम के मन में उस दिन नागपुर में बड़ा मौलिक विचार जागा था। कहने लगे– बस, अब तुम लोगों की बरात में जाने की इच्छा है। हम लोगों ने कहा– अब किशोरों जैसी बचकानी बरात तो होगी नहीं। अब तो बरात ऐसी होगी की किसी को भगाकर लाने के कारण हथकड़ी पहने हम होंगे और पीछे चलोगे तुम लोग, जमानत देनेवाले। ऐसी बरात होगी। चाहो तो बैंड भी बजवा सकते हो।

विवाह का दृश्य बड़ा दारुण होता है। बिदा के वक्त औरतों के साथ मिलकर रोने को जी करता है। लड़की के बिछुड़ने के कारण नहीं, उसके बाप की हालत देखकर लगता है, इस कौम की आधी ताकत लड़कियों की शादी करने में जा रही है। पाव ताकत छिपाने में जा रही है– शराब पीकर छिपाने में, प्रेम करके छिपाने में, घूस लेकर छिपाने में– बची हुई पाव ताकत से देश का निर्माण हो रहा है– तो जितना हो रहा है, बहुत हो रहा है। आखिर एक चौथाई ताकत से कितना होगा।

यह बात मैंने उस दिन एक विश्वविद्यालय के छात्र-संघ के वार्षिकोत्सव में कही थी। कहा था–तुम लोग क्रांतिकारी तरुण-तरुणियां बनते हो। तुम इस देश की आधी ताकत को बचा सकते हो। ऐसा करो, जितनी लड़कियां विश्वविद्यालय में हैं, उन से विवाह कर डालो। अपने बाप को मत बताना। वह दहेज मांगने लगेगा। इसके बाद जितने लड़के बचें, वे एक-दूसरे की बहन से शादी कर लें। ऐसी बुनियादी क्रांतिकारी काम कर डालो। और फिर जिस सिगड़ी को ज़मीन पर रखकर तुम्हारी मां रोटी बनाती है, उसे टेबिल पर रख दो जिससे तुम्हारी पत्नी सीधी खड़ी होकर रोटी बना सके। २०-२२ सालों में सिगड़ी ऊपर नहीं रखी जा सकी और न झाड़ू में चार फुट का डण्डा बांधा जा सका। अब तक तुम लोगों ने क्या खाक क्रांति की है।

छात्र थोड़ा चौंके। कुछ ही-ही करते भी पाए गए। मगर हुआ कुछ नहीं।

एक तरुण के साथ सालों मेहनत करके उसके खयालात मैंने संवारे थे। वह शादी के मंडप में बैठा तो ससुर से बच्चे की तरह मचलकर बोला– बाबूजी हम तो वेस्पा लेंगे। वेस्पा के बिना कौर नहीं उठाएंगे। लड़की के बाप का चेहरा फक्। जी हुआ, जूता उतारकर पांच इस लड़के को मारूं और फिर २५ खुद अपने को। समस्या यों सुलझी कि लड़की के बाप ने साल-भर

में वेस्पा देने का वादा किया, नेग के लिए बाज़ार से वेस्पा का खिलौना मंगाकर थाली में रखा, फिर सवा रुपया रखा और दामाद को भेंट किया। सवा रुपया तो मरते वक्त गोदान के निमित्त दिया जाता है न। हां, मेरे उस तरुण दोस्त की प्रगतिशीलता का गोदान हो रहा था।

बरात की यात्रा से मैं बहुत घबराता हूं, खास कर लौटते वक्त जब बराती बेकार बोझ हो जाता है। अगर जी भरकर दहेज न मिले, तो वर का बाप बरातियों को दुश्मन समझता है। मैं सावधानी बरतता हूं कि बरात की विदा के पहले ही कुछ बहाना करके किराया लेकर लौट पड़ता हूं।

एक बरात से वापसी मुझे याद है।

हम पांच मित्रों ने तय किया कि शाम ४ बजे की बस से चलें। पन्ना से इसी कम्पनी की बस सतना के लिए घण्टे-भर बाद मिलती है, जो जबलपुर की ट्रेन मिला देती है। सुबह घर पहुँच जाएंगे। हममें से दो को सुबह काम पर हाजिर होना था, इसलिए वापसी का यही रास्ता अपनाना जरूरी था। लोगों ने सलाह दी कि समझदार आदमी इस शाम वाली बस से सफर नहीं करते। क्या रास्ते में डाकू मिलते हैं? नहीं, बस डाकिन है।

बस को देखा तो श्रद्धा उभर पड़ी। खूब वयोवृद्ध थी। सदियों के अनुभव के निशान लिए हुए थी। लोग इसलिए इससे सफर नहीं करना चाहते कि वृद्धावस्था में इसे कष्ट होगा। यह बस पूजा के योग्य थी। उस पर सवार कैसे हुआ जा सकता है!

बस-कम्पनी के एक हिस्सेदार भी उसी बस से जा रहे थे। हमने उनसे पूछा—यह बस चलती भी है? वह बोले—चलती क्यों नहीं है जी। अभी चलेगी। हमने कहा—वही तो हम देखना चाहते हैं। अपने आप चलती है यह?—हां जी और कैसे चलेगी?

गज़ब हो गया। ऐसी बस, अपने-आप चलती है!

हम आगा-पीछा करने लगे। पर डाक्टर मित्र ने कहा– डरो मत, चलो! बस अनुभवी है। नई-नवेली बसों से ज्यादा विश्वसनीय है। हमें बेटों की तरह प्यार से गोद में लेकर चलेगी।

हम बैठ गए। जो छोड़ने आए थे, वे इस तरह देख रहे थे, जैसे अंतिम विदा दे रहे हैं। उनकी आंखें कह रही थीं– आना-जाना तो लगा ही रहता है। आया है सो जाएगा–राजा, रंक, फकीर। आदमी को कूच करने के लिए एक निमित्त चाहिए।

इंजन सचमुच स्टार्ट हो गया। ऐसा लगा, जैसे सारी बस ही इंजन है और हम इंजन के भीतर बैठे हैं। कांच बहुत कम बचे थे। जो बचे थे; उनसे हमें बचना था। हम फौरन खिड़की से दूर सरक गए। इंजन चल रहा था। हमें लग रहा था कि हमारी सीट के नीचे इंजन है।

बस सचमुच चल पड़ी और हमें लगा कि यह गांधीजी के असहयोग और सविनय अवज्ञा आंदोलनों के वक्त अवश्य जवान रही होगी। उसे ट्रेनिंग मिल चुकी थी। हर हिस्सा दूसरे से असहयोग कर रहा था। पूरी बस सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौर से गुजर रही थी। सीट का बॉडी से असहयोग चल रहा था। कभी लगता, सीट बॉडी को छोड़कर आगे निकल गई है। कभी लगता कि सीट को छोड़कर बॉडी आगे भागी जा रही है! आठ-दस मील चलने पर सारे भेदभाव मिट गए। यह समझ में नहीं आता था कि सीट पर हम बैठे हैं या सीट हम पर बैठी है।

एकाएक बस रुक गई। मालूम हुआ कि पेट्रोल की टंकी में छेद हो गया है। ड्राइवर ने बाल्टी में पेट्रोल निकालकर उसे बगल में रखा और नली डालकर इंजन में भेजने लगा। अब मैं उम्मीद कर रहा था कि थोड़ी देर बाद बस-कम्पनी के हिस्सेदार इंजन को निकालकर गोद में रख लेंगे और उसे नली से पेट्रोल पिलाएंगे, जैसे मां बच्चे के मुंह में दूध की शीशी लगाती है।

बस की रफ्तार अब पन्द्रह-बीस मील हो गई थी। मुझे उसके किसी हिस्से पर भरोसा नही था। ब्रेक फेल हो सकता है, स्टीयरिंग टूट सकता है। प्रकृति के दृश्य बहुत लुभावने थे। दोनों तरफ हरे-हरे पेड़ थे, जिन-पर पक्षी बैठे थे। मैं हर पेड़ को अपना दुश्मन समझ रहा था। जो भी पेड़ आता, डर लगता कि इससे बस टकराएगी। वह निकल जाता तो दूसरे पेड़ का इंतजार करता। झील दिखती तो सोचता कि इसमें बस गोता लगा जाएगी।

एकाएक फिर बस रुकी। ड्राइवर ने तरह-तरह की तरकीबें कीं, पर वह चली नहीं। सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू हो गया था। कम्पनी के हिस्सेदार कह रहे थे— बस तो फस्ट क्लास है जी! ये तो इत्ताफाक की बातें हैं।

क्षीण चांदनी में वृक्षों की छाया के नीचे वह बस बड़ी दयनीय लग रही थी। लगता, जैसे कोई वृद्धा थककर बैठ गई हो। हमें ग्लानि हो रही कि इस बेचारी पर लदकर हम चले आ रहे हैं। अगर इसका प्राणांत गया तो इस बियाबान में हमें इसकी अन्त्येष्टि करनी पड़ेगी।

हिस्सेदार साहब ने इंजन खोला और कुछ सुधारा। बस आगे चली उसकी चाल और कम हो गई थी।

धीरे-धीरे वृद्धा की आंखों की ज्योति जाने लगी। चांदनी में रास्ता टटोलकर वह रेंग रही थी। आगे या पीछे से कोई गाड़ी आती दिखाती तो वह एकदम किनारे खड़ी हो जाती और कहती— निकल जाओ बेटी! अपनी तो वह उम्र ही नहीं रही।

एक पुलिया के ऊपर पहुँचे ही थे कि एक टायर फिस्स करके बैठ गया बस बहुत जोर से हिलकर थम गई। अगर स्पीड में होती तो उछलकर नाले में गिर जाती। मैंने उस कम्पनी के हिस्सेदार की तरफ पहली बार श्रद्धा भाव से देखा। वह टायरों की हालत जानते हैं, फिर भी जान हथेली

लेकर इसी बस से सफर कर रहे हैं। उत्सर्ग की ऐसी भावना दुर्लभ है। सोचा इस आदमी के साहस और बलिदान-भावना का सही उपयोग नहीं हो रहा है। इसे तो किसी क्रांतिकारी आंदोलन का नेता होना चाहिए। अगर बस नाले में गिर पड़ती और हम सब मर जाते, तो देवता बाहें पसारे उसका इन्तजार करते। कहते—वह महान आदमी आ रहा है जिसने एक टायर के लिए प्राण दे दिए। मर गया, पर टायर नहीं बदला।

दूसरा घिसा टायर लगाकर बस फिर चली। अब हमने वक्त पर पन्ना पहुंचने की उम्मीद छोड़ दी थी। पन्ना कभी भी पहुंचते की उम्मीद छोड़ दी थी—पन्ना, क्या, कहीं भी, कभी भी पहुंचने की उम्मीद छोड़ दी थी। लगता था, जिन्दगी इसी बस में गुजारनी है और इससे सीधे उस लोक की ओर प्रयाण कर जाना है। इस पृथ्वी पर उसकी कोई मंज़िल नहीं है। हमारी बेताबी, तनाव खत्म हो गए। हम बड़े इत्मीनान से घर की तरह बैठ गए। चिन्ता जाती रही। हंसी-मजाक चालू हो गया।

ठंड बढ़ रही थी। खिड़कियां खुली थीं ही। डाक्टर ने कहा—गलती हो गई। 'कुछ' पीने को ले आते तो ठीक रहता।

ठंड बढ़ रही थी। एक गांव पर बस रुकी तो डाक्टर फौरन उतरा। ड्राइवर से बोला—ज़रा रोकना! नारियल ले आऊं। आगे मढ़िया पर फोडना है।

डाक्टर झोंपडियों के पीछे गया और देशी शराब की बोतल ले आया। छागलों में भरकर हम लोगों ने पीना शुरू किया।

इसके बाद किसी कष्ट का अनुभव नहीं हुआ। पन्ना से पहले ही सब मुसाफिर उतर चुके थे। बस-कम्पनी के हिस्सेदार शहर के बाहर ही अपने घर पर उतर गए। बस शहर में अपने ठिकाने पर रुकी। कम्पनी के दो मालिक रज़ाइयों में दुबके बैठे थे। रात का एक बजा था। हम पांचों उतरे। मैं सड़क के किनारे खड़ा रहा। डाक्टर भी मेरे पास खड़ा होकर बोतल

से अन्तिम घूंट लेने लगा। बाकी तीन मित्र बस-मालिकों पर झपटे। उनकी गर्म डांट हम सुन रहे थे। पर वे निराश लौटे। बस-मालिकों ने कह दिया था—सतना की बस तो चार-पांच घण्टे पहले जा चुकी। अब लौटती होगी। अब तो बस सवेरे ही मिलेगी।

आसपास देखा, सारी दुकानें-होटलें बन्द। ठण्ड कड़ाके की। भूख भी खूब लग रही थी। तभी डाक्टर बस-मालिकों के पास गया। पांचेक मिनट में उनके साथ लौटा तो बदला हुआ था। बड़े अदब से मुझसे कहने लगा—सर, नाराज मत होइए। सरदारजी कुछ इन्तजाम करेंगे। सर, ...सर! उन्हें अफसोस है कि आपको तकलीफ हुई।

अभी डाक्टर बेतकल्लुफी से बातें कर रहा था और अब मुझे 'सर' कह रहा है। बात क्या है? कहीं ठर्रा ज्यादा तो असर नहीं कर गया। मैंने कहा—यह तुमने क्या सर-सर लगा रखी है?

उसने फिर वैसे ही झुककर कहा—सर, नाराज़ मत होइए। सर, कुछ इन्तज़ाम हुआ जाता है।

मुझे तब भी कुछ समझ में नहीं आया। डाक्टर भी परेशान था कि मैं समझ क्यों नहीं रहा हूं। वह मुझे अलग ले गया और समझाया—मैंने इन लोगों से कहा है कि तुम संसद्-सदस्य हो। इधर जांच करने आए हो। मैं एक क्लर्क हूं, जिसे साहब ने एम. पी. को सतना पहुंचाने के लिए भेजा है। मैंने इनसे कहा कि सरदारजी, मुझ गरीब की तो गर्दन कटेगी ही, आपकी भी लेवा-देई हो जाएगी। वह स्पेशल बस से सतना भेजने का इन्तज़ाम कर देगा। ज़रा थोड़ा एम. पी. पन तो दिखाओ। उल्लू की तरह क्यों पेश आ रहे हो?

मैं समझ गया कि मेरी काली शेरवानी काम आ गई। यह काली शेरवानी और ये बड़े बाल मुझे कई रूप देते हैं। नेता भी दिखता हूँ, शायर भी और अगर बाल सूखे-बिखरे हों तो जुम्मन शहनाई वाले का भी धोखा हो जाता है।

मैंने मिथ्याचार का आत्मबल बटोरा और लौटा, तो ठीक संसद् सदस्य की तरह। आते ही सरदारजी से रोब से पूछा– सरदारजी, आर. टी. ओ. से कब तक इस बस को चलाने का सौदा हो गया है?

सरदारजी घबरा उठे। डाक्टर खुश कि मैंने फस्ट क्लास रोल किया है।

रोबदार ससद्-सदस्य का एक वाक्य काफी है, यह सोचकर मैं दूर खड़े होकर सिगरेट पीने लगा। सरदारजी ने वहीं मेरे लिए कुर्सी बुलवा दी। वह डरे हुए थे और डरा हुआ मैं भी था। मेरा डर यह था कि कहीं पूछताछ होने लगी कि मैं कौन संसद्-सदस्य हूँ तो क्या कहूँगा। याद आया कि अपने मित्र महेशदत्त मिश्र का नाम धारण कर लूंगा। गाँधीवादी होने के नाते वह थोड़ा झूठ बोल कर मुझे बचा ही लेंगे।

अब मेरा आत्म विश्वास बहुत बढ़ गया। झूठ अगर जम जाए तो सत्य से ज्यादा अभय देता है।

मैं वहीं बैठे-बठे डाक्टर से चीखकर बोला– बाबू, यहाँ क्या कयामत तक बैठे रहना पड़ेगा? इधर कहीं फोन हो तो कलेक्टर को इत्तिला कर दो। वह गाड़ी का इंतज़ाम कर देंगे।

डाक्टर वहीं से बोला– सर, बस एक मिनट। जस्ट ए मिनट, सर!

थोड़ी देर बाद सरदारजी ने एक नई बस निकलवाई। मुझे सादर बैठाया। बस चल पड़ी।

मुझे एम. पी. पन काफी भारी पड़ रहा था। मैं दोस्तों के बीच अजनबी की तरह अकड़ा बैठा था। डाक्टर बार-बार 'सर' कहता रहा और बस का मालिक 'हुजूर'।

सतना में जब रेलवे के मुसाफिरखाने में पहुँच तब डाक्टर ने कहा– अब तीन घंटे लगातार तुम मुझे 'सर' कहो। मेरी बहुत तौहीन हो चुकी है।

# जेब

**डा. प्रभाकर माचवे**

जेब खाली थी मगर दिल था भरा।
दल हुआ खाली, भरी है जब से जेब॥

जेब और दिल का बड़ा निकट सम्बन्ध है। हृदय के ठीक ऊपर पैसा रखने का पाकिट इसीलिए निर्माण किया गया है। जितना हृदय, खाली जेब के नीचे साफ पाया, उतना ही भरी हुई जेबों के नीचे मैला। बात यह है कि आदमी एक वक्त एक चीज भर ले, या तो जेब या दिल।

परसों एक कवि मिले। बहुत दुःखी थे। मैं समझा कि इस 'प्रेमी' जीव का दिल कोई चुरा ले गया होगा, या दिल इसका टूट गया होगा, इस लिए आंखों में आँसू ला रहा है, परन्तु बात यह थी कि उसकी लापरवाही से किसी ने उसकी जेब काट ली थी, बहुत सफाई से और उसके कुछ चैक और सिनेमागीतों के कांट्रेक्ट आदि गायब थे। इसलिए कवि जनों को चाहिए कि वे जेब अपने कपड़ों में न रखा करें। क्योंकि अन्यमनस्क वे सदा रहा करते हैं और 'पाकिटमारों से सावधान!" यह पटिया स्टेशन पर पढ़ते समय सम्भव है कि कोई 'किस्मत' का मारा यहाँ आ गुजरे फिर दिल तो वह पहले ही खो बैठे हैं, दिल को ढांकने वाले जेब के नोट भी खो बैठें।

एक बार अंग्रेजी के हास्य लेखक ई. बी. ल्यकस, एक "ज़ू" देखने गये। चिड़ियाघर के भयानक बाघ-सिंह देखकर वे इतना दुःख प्रदर्शित कर रहे थे कि सभ्यता ने इतना विकास कर लिया, परन्तु इन वन्य और हिंस्र पशुओं को देखिये इनमें कोई परिवर्तन नहीं। मनुष्य कितना अधिक सभ्य और संस्कृत है। बाहर आते ही किसी भले मानुस ने उनकी जेब उड़ा दी। इस पर वे लिखते हैं कि ये बाघ-सिंह आदमियों से कहीं बेहतर हैं। उनमें एक बड़ा गुण है, वे पाकिटमारी नहीं कर सकते।

गिरहकट, जेबकतरे, गाँठकतरे या कि पाकिटमार जाति के प्राणी शायद बढ़ते जा रहे है, क्योंकि वैसे तो मांगने के अनेकानेक अध्यात्मिक, धार्मिक, शरणार्थिक, राष्ट्रीय और चाँदिक (चंदा से बनाया शब्द) मार्ग इस पावन देश में हैं ही, 'बिन मांगे पाकिट मिले, मांगे मिले न वोट' वाला यह नया मार्ग ही चल पड़ा है। और कुछ स्थानों में इनकी बाकायदा ट्रेनिंग दी जाती है और साहित्य के क्षेत्रों में एक पत्रिका से कोई लेख उठा लेना, उसे पूरा या उसके अंश ज्यों-के-त्यों छाप देना, अनुवाद करा लेना, और फिर उसका नामोल्लेख तक न करना, कृतज्ञता प्रकाश तक न करना, यह सब साहित्यिक जब कतरापन नहीं तो और क्या है? कई लेखक पुंगव तो इसी कैंची के बल पर अपने साहित्यिक 'सैलून" चलाया करते हैं।

आखिर आदमी को अपने कपड़े में जेब बनाने की इच्छा क्यों और कब से हुई? संस्कृत में जेब के लिए शब्द नहीं। संस्कृत काल में लोग सिले हुए कपड़े नहीं पहनते थे। फिर पता नहीं किस संशोधक ने वस्त्र में यह पैबन्द जोड़ दिया। अब तो वस्त्र में इतनी जेबें पता नहीं क्यों सी दी जाती हैं? कई तो निरे फैशन की होती हैं। कई जेबों में से रूमाल झांकते रहते हैं ओर कई में नकली फाउन्टन पेन के क्लिप ही लगे रहते हैं। कई सिर्फ इसलिए होती हैं कि उनमें हाथ पड़ा रह सके। वैसे जेबघड़ी की कुछ जेबें होती हैं। फौजी पोशाक में पता नहीं पीछे के भाग पर छोटी जेब क्यों रखी जाती है? और कुछ टोपियों के बाहर जेब होती है– वह किसलिए यह अभी मेरी

समझ में नहीं आ पाया। सम्भव है कि वे जेबें सिर्फ 'जेब-वो जीनत' (शोभा और सौन्दर्य) के लिए ही हैं।

जेब बनाने की कुछ इच्छा मानव प्राणी की संग्रह-वृत्ति से सम्बन्धित है। प्रत्येक पशु में, और मानव एक जरा-सा सुधरा हुआ पशु ही तो है—यह संग्रह-वृत्ति प्रबल मात्रा में विद्यमान है। कुत्ता सूखी हड्डियाँ जमा कर एक स्थान पर जमीन में गाड़ देता है। हड्डियाँ भी गुप्त रखने के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों पर दफनाकर रखता है; उसी प्रकार जैसे आदमी अपना पैसा अलग-अलग बैंकों में या अलग-अलग व्यापारों में अटकाता है। बाघ और शेर भी जब अपना भक्ष्य पकड़ते हैं पहिले अपनी गुफा में या सदा के लिये सुरक्षित स्थान पर ले जाते हैं और जितनी इच्छा होती है उतना खाकर बाकी बचाकर रखते हैं। उन स्थानों पर पहरा देते हैं। शीत कटिबन्ध में इसी प्रकार की संग्रह-वृत्ति पशुओं में अधिक पाई जाती है। लोमड़ी इसी प्रकार अपना संग्रह कर रखती है। भेड़िये भी अपने आगे के समय के लिए खाद्य का बीमा कर रखते हैं। जब वे रोम्युलस रेमस जैसे मानव शिशु को अपना दूध पिला कर पालते हैं तो पता नहीं उनका हेतु क्या होता है? इन दूरदर्शी प्राणियों से उल्टे भी कई जानवर पाये जाते हैं। जैसे उत्तरी ध्रुव-प्रदेश में कई बड़े-बड़े मत्स्य और अजगर जो दीर्घकाल सोते रहते हैं।

कुछ पशुओं को प्रकृति ने उनकी रचना में ही जेबें दी हैं—जिससे वे अपने मुँह में मछलियों को पकड़कर उनका संग्रह कर रखते हैं—पेलकन पक्षी के गले में ऐसी जेबें प्रकृति ने सी दी हैं। कुछ पशु अपने मुंह में अन्न संग्रह कर जुगाली के द्वारा उसका चार्विय-चर्वण कर सकते हैं। इस जुगली क्रिया में सबसे तेज है उष्ट्रराज। उसके पेट में कई जेबें रहती हैं, जिनमें वह आठ-आठ दिन का पानी भर लेता है। कहते हैं ऊँट की पीठ पर जो कूबड़ होता है वह निरी चर्बी का होता है और अन्न की कमी के दिनों वह उसका उपयोग भी कर सकता है। चींटी बहुत बड़ी संग्रहशीला है। मकड़ी और मधु-मक्खियों में भी यह प्रवृत्ति पर्याप्त परिमाण में पाई जाती है। गरुड़, बाज

और मैंना संग्रहप्रिय पक्षी हैं। कुछ भारतीय पक्षी पर्वतों में इतना बड़ा अनाज का संग्रह कर रखते हैं कि दो-चार बोरी धान्य वहाँ मिल सके। पशुओं की इतनी सब संग्रह प्रवृत्ति देखने पर भी कुछ आदमी हैं कि पशुओं से भी गये गजरे होते हैं। वे संग्रह करते ही नहीं। फिर भीख मांगते फिरते हैं।

जेब से हम संग्रह और असंग्रह की बात पर चले गये। असल में संग्रह भी किस-किस चीज का किया जाय? और कहां तक किया जाय? पुराने सिक्के, डाक के टिकट, पुरानी घड़ियां, शस्त्रास्त्र, सांप, रंग-रंग के पंख, चित्रों वाले पत्थर, हस्ताक्षर के नमूने, हस्तलिखित ताड़पत्र पर लिखी किताबें और ऐसी कई अजीबो-गरीब चीजों के संग्रह करने वाले लोग होते हैं। एक आदमी ने देश-देश के जूते और देश-देश की टोपियों का ही संग्रह कर रखा है। तो एक भले मनुष्य को अलग अलग प्रकार के दीपक एकत्र करने का शौक है। यह संग्रहवृत्ति कई बार आदत हो जाती हैं, और बचपन से पड़ी हुई यह चोरी की लत कि जिस किसी की चीज अच्छी देखी उठाई, जेब में रख ली—यहां तक बढ़ जाती है कि इंग्लैंड के एक प्रधान सचिव की पत्नी रोज उनके ओवर कोट की जेब से निकली सब चीजें जहाँ-जहाँ वे दिन भर जाते थे, उन स्थानों में एक बार घुमा देती थीं, लोग अपनी-अपनी चीजें वापिस ले लें।

एक और चीज जो जेब से याद आ जाती है—वह है जेब-खर्च। इस रकम का कोई हिसाब नहीं पूछा जाता। बड़े-बड़े रजवाड़ों के राजा-महराजाओं से लगाकर नौकर-चाकरों तक को रकम दी जाती है। इसमें कुछ भी खर्च आ सकता है। 'जेब गरम करना' यह मुहावरा भी आपने सुना होगा।

अन्त में एक मजेदार बात बता दूँ। एक लेखक ने अपनी दरिद्रता और अनुभव की विशालता बतलाते हुए लिखा है, "पाकेटहीन अवस्था में मैं घूमता रहा। कई प्रान्तों में, और जो-जो अनुभव मिले उन्हें अपनी पाकेट बुक में दर्ज करता रहा", यह पाकिट बुक ये हजरत रखते कहाँ थे? यह रिसर्च स्कालरों का विषय है—सो यहाँ छोड़ दूँ।

# और तब महाराजकुमार को नींद आई

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

किसी रियासत के महाराजकुमार उस दिन कलकत्ता के विख्यात मारवाड़ी सेठ के मेहमान बनकर पधारे। सेठ ने महाराजकुमार के आतिथ्य में लेक रोड-स्थित अपना माडर्न बँगला अर्पित कर दिया, स-सामग्री और स-सर्वेण्ट।

महाराजकुमार को नींद न आने का रोग था। उसी की चिकित्सा के सिलसिले में वह सुदूर-स्थित अपनी रियासत से कलकत्ता आये थे। उस रोग का कारण कुछ डाक्टरों ने दुर्बलता बतलाया—शरीर-मस्तिष्क दोनों ही की; मगर दूसरे डाक्टरों ने महाराजकुमार को नींद न आने का सबब पोलिटिकल बतलाया। क्योंकि उनकी रियासत भी भारतीय संघ के समुद्र में लीन हो गई, अतः भविष्य-चिन्ता, फलतः अमिट रोग।

रियासत की जनता जिस द्रुतगति से स्वतन्त्र हुई जा रही है उसे देखते ही कुछ डाक्टरों ने ऐसा विश्वास प्रकट किया कि महाराजकुमार का रोग अब कदाचित् दैवयोगेन ही दूर हो तो हो। उन्हें फ़िक्र है अपने भविष्य की। हैं वह एम. ए. पास बेशक, पर, सिवा पढ़ने-लिखने, सोने और आर्डर देने के, दूसरा कोई काम महाराजकुमार को मालूम नहीं।

महाराजकुमार के साथ तीन डाक्टर और तेरह नौकर। तीन डाक्टरों में एक लेडी डाक्टर कुमार की माता की ओर से, एक बंगाली डाक्टर पिता की तरफ़ से और स्वयं महाराजकुमार का पर्सनल सर्जन मद्रासी डा. के. सी. रेड्डी। लेक रोड का बँगला ब्यूटीफुल, चारों ओर बाग-ही-बाग और बहार ही बहार, बारहमासी। जागरण भी जहाँ पर पहुंचकर क्षणभर विश्राम करना चाहे ऐसा बँगला मारवाड़ी धनकुबेर का। कमरे विस्तृत, प्रकाशित, आधुनिकतम सज्जा से सज्जित!

पर वहाँ भी महाराजकुमार को आँखों में नींद नहीं। सेमर के तकियों पर चैन नहीं, मन्दार के तकियों पर शान्ति नहीं, रेशमी तकियों पर राहत नहीं, मखमली तकियों पर आराम नहीं। तीन डाक्टर और तेरह नौकरों ने महाराजकुमार को सारी रात बेचैन देखा।

महाराजकुमार सोचते रहे कि कल उनके बाल-बच्चों का क्या होगा? रियासत और पेन्शन में दम है भी तो क्या? जिस लोकमत ने आज राजाओं के हाथ से सत्ता को छीन लिया है, वही लोकमत भविष्य में राजा और राजवंश के साथ क्या नहीं कर गुज़रेगा! –कोई भरोसा है!

कुमार की उम्र तीस साल की और उनके बच्चे ग्यारह, याने एक कम पूरा दर्जन। तिस पर भी महाराजकुमार की सुपत्नी को देखिए तो अभी कन्या कुमारी या किशोरी-मुखी मालूम पड़ती हैं। कुमार को अपने परिवार से बड़ा प्रेम होना ही चाहिए।

कुमार के आधा दर्जन सेक्रेटरी सलाहकार, एक दर्जन 'कार', अनाप-शनाप खर्चे, अनाप-शनाप व्यापार। रियासत की इज्ज़त और कर्ज़ के बल पर सारा दिखावा चलता था। पर अब! आज़ादी की इस हवा में? अब किस रियासत की जनता सामन्तों के ठेंगे के नीचे रहेगी? एक की भी नहीं। फिर? हम राजवंशियों का क्या होगा? क्या होगा मेरा? मेरी सुपत्नी का? एकमहलभर प्रफुल्ल कमल-मुख बच्चों का? इन महलों और मोटरों का क्या होगा? क्या बिना महल, मोटर, कुशन-गद्दी के हम राज-

वंशी मर नहीं जाएंगे ? इस बँधी पेन्शन में शौकीनों के इतने बड़े परिवार का क्या होगा? इतने में क्या शान रहेगी राजसी, क्या गान-तान और क्या नाच ! भावों से भरपूरहोने के बाद अभावों का खाली जीवन खलेगा भयानक ! जब अपना स्टैण्डर्ड ही न रहा, तो क्या जीना और क्या मरना !

महाराजकुमार की आदत बहुत सबेरे उठकर नहा-निपटकर घूमने की। सारी रात नींद न आने पर भी ठीक चार बजे उन्होंने बिस्तर छोड़ दिया और साढ़े चार बजे तक नहा-धो कपड़े बदल टहलने को बाहर निकले। सेक्रटरी ने मोटर मँगाने की आज्ञा चाही तो महाराजकुमार ने इशारे से ना कर दिया, "मैं अकेले ही घूमने जाऊँगा। तुम लोग अपना काम करो।"

राजकुमार लेक रोड से शहर की तरफ चले। पौने पाँच बजे अभी रात ही थी। कलकत्ता सो रहा था। बड़े-बड़े खम्बे बिजली की आँखों से ताक-ताककर धूर्त्त निशाचरों से नागरिकों की रक्षा कर रहे थे। 'कितना प्रकाश? ' राजकुमार ने सोचा, "पर बाहर का प्रकाश अन्तर का अन्धकार कहाँ दूर कर पाता है? अगर इसी तरह कुछ पिदनों और मुझे नींद न आयी तो जिन्दगी का कौन भरोसा ! और मैं न रहूँगा, ..तो मेरे बेटों का क्या होगा? बेटियों का क्या होगा ? पत्नी का? और ...! मैं फिर सोचने लगा।

सोच या चिन्ता से बचने के लिए राजकुमार ने अपने चारों ओर देखा। देखा लोगों को सोते। लोग सोते नजर आये, बँगले में गुदगुदे पलंगों पर नहीं, न तो रेशमी मखमली तकिये ही लगाकर। लोग सोए थे चारों ओर ऐसे-ऐसे स्थानों पर, जहाँसपने में भी सोने की कोई कल्पना न कर सके । पटरियों पर, मकानों के सामने के बरामदों में, दूकानों के चबूतरों पर। जिसका जहाँ सींग समाया वह वहीं सोता नजर आया। अपने रिक्शों को गले में फँसाकर कतार में सोए रिक्शे वाले। तरह-तरह के मैले मज़दूर, एक-एक फटी चटाई पर दो-दो चार-चार सोते। बेखबर, पेड़ के नीचे सोता कोई चीनी पागल, गोद में कुत्ते का पिल्ला लिये। एक बड़े मकान के चबूतरे के नीचे की तंग 'कोलिया' में कुत्ते की तरह सोती कोई अन्धी ... अधनंगी।

एक बड़े मकान के नीचे महाराजकुमार ने पटरी पर सोने वालों का एक पूरा मुहल्ला देखा। बेघर आवारे थे। उसमें पुरुष, उसमें स्त्री, उसमें बच्चे, उसमें बूढ़े, उसमें अपाहिज ! और सभी मस्त सोते थे, घोड़े बेचकर। व दुखी है या अभाव में, ऐसा एक चेहरे से भी प्रकट नहीं। महाराजकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ यह देखकर कि आदमी इतने कम सामान में भी इतना स्वस्थ रह सकता है।

एक के सरहाने ढोल, दूसरे के हारमोनियम, तीसरे की बगल में एकतारा, चौथे के बाँसुरी—'अरे !' कुमार ने सोचा, 'तो ये गाते-बजाते भी हैं ! इस दारिद्रय में ! कमाल ! और इतने लोग और ऐसे अभावों में प्रसन्न रह सकते हैं तो हमीं कौन से बताशे हैं या मोम के बने हुए हैं ! सुख-दुख महज खयाल... मान लेने की बात है। जिस स्थिति में मैं मर जाऊँ, उसमें ये जी ही नहीं रहे हैं बल्कि हँसते-बोलते, गाते-बजाते, पीते-खाते जी रहे हैं। इनसे सबक़ लेना होगा। परिस्थिति के अनुसार आदमी में अपने को बदल देने की ताक़त होनी चाहिए। जो दुख उठाने को तैयार नहीं, उन्हें सुखी रहने का कोई अधिकार नहीं है।

महाराजकुमार की नज़र फटे बोरे पर खर्राटे लेते दो प्राणियों पर पड़ी। उनमें एक जवान आवारा था और दूसरी युवती भिखारिन। और दोनों के बीच में छह महीने का एक नन्हा-सा बच्चा।

"अच्छा ! हजरत भी यहाँ सो रहे हैं।" कुमार के मुँह से निकल गया। बच्चे से बढ़कर आरामतलब, सुकुमार और शाहमिज़ाज कौन होगा? वह भी सुख-दुख से निर्द्वन्द्व सानन्द सो रहा है। ये लोग सुखी यों हैं कि इन्हें राजसुख के आने-पाने का भय नहीं। इनके सिर पर किसी संघ या सरदार के रियासती विभाग या विचार की छाया नहीं। राज-रियासत छोड़ो—इनके लिए तो 'सकल भूमी गोपाल की' है।

महाराजकुमार के मन में सोने की इच्छा उत्पन्न हुई। वहीं, भिक्षुक-परिवार के निकट। उन्हें पहली जँभाई आयी, दूसरी, तीसरी—ऐसा लगा

कि तुरन्त सो नहीं जाएँगे तो गिर पड़ेंगे। मकान के खम्भे का सहारा ले राजकुमार भिखारियों के निकट पड़ सो गए।

*         *         *

काफ़ी दिन निकल आने पर भिखारी जगे तो उन्होंने अपने बीच में एक विचित्र पुरुष को पाया जिसमें भिखारियों का एक भी लक्षण नहीं और राजलक्षण अनेक! धुले चाँद-सा वदन, सिल्क की महँगी पोशाक, अमरीकी कट के मुलायम कीमती जूते, अँगूठियाँ, कलाई-घड़ी।

"कोई जासूस है", एक ने अन्दाज़ लगाया, "हम में चोर-डाकू ढूँढ़ने को, राजसी स्वाँग बनाकर आया है।"

"पागल है," दूसरे ने कहा, "और कोई धनवान पागल !"

"यह भिखारी बनकर हमारे दल मे मिल जाए तो मैं इससे शादी कर लूं।" एक मलिना मगर युवती ने मोह प्रकट किया।

"ज्योतिषी की राय क्या है?" एक बूढ़े कोढ़ी ने सलाह दी, "ज्योतिषी को जगाओ!"

जगकर, आँखें मलकर, महाराजकुमार को देखते ही अनपढ़, आवारा ज्योतिषी एकाएक भभक उठा, "अरे यह तो कोई राजा है जिसके भाग में भिखारियों का अगुआ बनना लिखा है!"

"ज्योतिषी गधा है!" उसने कहा, जिसकी राय में राजकुमार कोई बना हुआ जासूस था। "यह जासूस है, किसी की तलाश में आया होगा और दारू के नशे में बुत सो गया होगा। नशा उतरने के पहले मैं साले का सिर फोड़ देना चाहता हूँ जिससे फिर कभी यार खाँ के पीछे पड़े ही नहीं।"

वह मोटा सोटा लेकर कुमार की तरफ़ बढ़ा ही था कि चारों ओर से आधा दर्जन आदमी उस पर टूट पड़े। मना करने पर भी कुमार के जाँनिसार नौकर सावधानी से उनके साथ ही थे। बहुत दिनों बाद महाराजकुमार को नींद लगती देख उन्होंने बाधा देना उचित न समझा। कुमार के सो जाने पर वे सब थोड़ी दूर पर छितरकार प्रतीक्षा में बैठ गए थे। "ठहरो!"

राज-सेवकों ने भिक्षुक को डाँटा, "महाराजकुमार को सोने दो। यह स्थान शुभ और स्वास्थ्यप्रद है हमारे लिए, जहाँ पर हमारे अन्नदाता को कई महीने बाद आज नींद आयी है। तुम सबको इनाम मिलेगा!"

"यह ज्योतिषी साला जादूगर है!" एक भिखारी ने प्रशंसा की, "जो कहता है, ठीक उतरता है! हमारे बड़े भाग्य जो आज राजकुमार भी हमारे बीच में सुख की साँस ले रहा है। अरे सालो!" उसने दूसरों को ललकारा, "मुँह क्या देखते हो। राजा मेहमान आया है। जो भी रूखा-सूखा अपने पास हो उसे पकाओ, बनाओ! जो हमारे साथ सोने को आया है, वह हमारे साथ खाने को थी आया है।"

"जो हमारे साथ खाएगा वह हमारा बनकर रहेगा भी," राजकुमार से सम्बन्ध करने की इच्छुक भिक्षुक युवती ने कहा, "यह उठेगा तो मैं नाचूँगी वह नाच जो फ़िलिम से सीखा है।"

"और मैं बाँसुरी बजाऊँगा!" आवारे ने कहा।

"और मैं ढोल!"

"और मैं एकतारा!"

कुमार उठे तो उन्हें मालूम पड़ा कि दरबार लगा है। दरबार असली दिलों का ही होता है। और जब कुमार की आँखें खुलीं, खुलीं ज़रा देर से, तो उनके सामने पूरा दरबार भरा नज़र आया। नाचने को तैयार युवती भिक्षुकी; बाँसुरी, ढोल, एकतारा, हारमोनियम सँभाले अनेक भिखारी; कई लड़के कुमार का मुँह धोने के लिए टीन के छोटे-बड़े डिब्बों में गर्म और ठण्डा पानी लिये; एक लड़की फटा मगर साफ़ तौलिया लिये; भिक्षक-वैद्य ज्योतिषी और बुज़ुर्ग मन्त्रियों की तरह हाथ बाँधे सामने खड़े। इधर कुमार ने जागरण की अंगड़ाई ली, उधर कोरस या समवेत स्वर में सुरी ले भिखारी गा चले, "मोकूँ कहाँ ढूँढ़े बन्दे? मैं तो तेरे

# श्मशान के सींग

श्रीराम शर्मा

अपनी कुटीपर, खेतमें बाहर, चारपाई पर पड़ा हुआ एक समाचारपत्र पढ़ रहा था, और पास ही बड़े भाई चाय बना रहे थे। इतनेमें एक चमार कुछ दूर पर आ खड़ा हुआ और बोला—"पाई लगूँ पंडितजी।"

मैं—"खुश रहो। क्या बात है? क्या कोई खेत काट ले गया, जो सुबह-ही-सुबह आया है?"

चमार—"नाँई तो पंडितजी। खेत-बेतु तो कोई नाँ काटि ले गयौ। परि—"

मैं—"परि क्या? बोलता क्यों नहीं?"

चमार—"बोलूँ का? बड़े पंडितजी इल्ल (हल्ला) करिंगे।"

मैं—तू कुछ कहे भी! आखिर बात क्या है?"

चमार (धीरे से) —"आज मैंने एक बड़ौ मतबारौ (बढ़िया) कस्सैला हिन्नु (काला हिरन) देखौ ऐ।"

मैं—"बस यही बात थी। कहाँ देखा है?"

चमार—"खेरियाके ऊसदा माँऊ (ओर) जो मरघटा ऐ, मैंऐं (वहीं) बु रहतु ऐ। तुमाई सौं (आपकी क़सम) पंडितजी, बाके सींग हूँ का बताऊँ!

गंगाधाई (गंगाकी सौंगंद) जि मालिम पत्ति ऐ कै काऊने मूँड पै दुऐ लठियाँ गाड़ि दई हौंइ। और बु कारौ किट्टी है। परि सैंज (सरलता से) में मराई ना खबैया।"

मैं—"अच्छी बात है। आज तो देर हो गयी है, कल देखा जायगा। तू उस ओर जो बन्दूककी आवाज सुने, तो आ जाना। ऐसा न हो कि कहीं तेरे लिये मैं बैठा रहूँ।"

चमार—"हाय कऊँ (कभी) ऐसी है सकतु ऐ! हमाऔ तौ और काम न्वैगो। आगि दयौ सिवरो तो खेतु खाएँ जातु ऐ। जो मरि गयौ, तौ ऐसे अकालमें लरिका-वारिनको पेटुई भरैगो। तो हूँ जातूँ। पालागें।

* * *

अगले दिन प्रातःकाल उठा और रायफ़ल तथा छै-सात कारतूस लेकर खेरिया गांवकी ओर बढ़ा। चार-पांच मील जाना था, फिर शिकारका समय भी तो सुबह या शाम ही होता है। हिरन रातको खुले मैदानमें रहते हैं, और दो-एक सन्तरी बने निगहबानी करते रहते हैं, जो भयके समय सबको सचेत कर देते हैं। प्रातः काल जाड़ेके दिनोंमें धूप चढ़े, ओस छूटने तक खुली जगहोंमें धूप लेते रहते हैं, फिर चरनेके लिये खेतोमें घुस जाते हैं। दोपहर के समय दो-एक टोली या दो-चार हिरन खुले मैदानों में भी आ जाते हैं। सायंकालको फिर खेतोंमें से निकलकर बाहर आ जाते हैं। इस विचारसे कि श्मशानवाला काला हिरन कहीं इधर-उधर न निकल जाय, मैं तेजीसे लपकता हुआ श्मशानकी ओर बढ़ा!।

शिकार खेलनेमें अनेक दोष हों; पर लाभ भी अनेक हैं। 'कछु तुन्द घटे, कछु मेद कटे' के अतिरिक्त प्रकृतिका आनन्द और सूर्योदयसे पूर्व उठनेका मजा शिकारी ही जानता है। शीतकालका समय था। भंगीके घरकी ओरसे 'अरुण शिखा धुनि कान' पड़ रही थी—'कुकड़ूं कुँ-२ कुकड़ूं कुँ-२। प्रभातका अभास था। जल्दी उठनेवाले कोई-कोई आदमी तालाबकी ओर

शौचादिके लिए जा रहे थे। मैं भी रायफल लिए चला जाता था। आगे चलकर देखा, तो दो गीदड़ हड्डियोंपर जुटे थे। मुझे देखकर भाग गये। धीरे-धीरे पृथ्वीपर चहल-पहल दिखायी पड़ने लगी।

एक गाँवसे, होकर निकला, तो लोगोंको अलावपर तापते पाया। गजी-गाढ़ेकी एक-एक चद्दर ओढ़े, सिरसे अंगोछा या पिछौरा लपेटे ताप रहे थे। कोई फू-फू करके आग तेज कर रहा था, तो कोई तम्बाकू पी रहा था। मुझे वहाँ होकर जाते देख सबने कहा–" पालगैं पंडितजी। " सबसे ' खुशी रहो ' कहकर मैं आगे बढ़ने लगा। यह देखकर उनमेंसे एक बोला– " आओ पंडितजी, नैंक तापि लेउ। हाथ-पांय ठिठुरि गये हौइंगे। आओ तापि लेउ। "

मैं–" नाँई ठिठुर गये। चलिबे सूं देहमें गरमी आबति ऐ। रुकिबेसूं देर है जाइगी। "

एक–" आज सबेरे ई सबेरे काँ जात औ ? "

दूसरा (उसकी ओर दाँत पीसकर और धीरेसे)–" सिकारी कूं खुपटत नाएँ (टोकते नहीं) ! "

मैं–" तुमैं ना मालिम पत्ति काँ जात ऐं। "

एक बूढ़ा–" तो बु तौ मराई खातु ना पंडितजी। दस-बीस पोत (बार) तो पिरोजाबाद (फीरोजाबाद) के सीसगरा (चूड़ी बनानेवाले) हैरानु है चुके ऐं। बापै निरी गोलीऊँ चलाई, परि सिवरी खाली गई। बा दिना, (एक लड़केकी ओर देखकर) अए वा दिना, जा दिना हमाएं कुआकी तार भई, ता दिना डिपटी साब सिबरे दिन हैरानु भये, परि बु हाथ नाँई आयौ। बु तो मरघटको हिलु ऐ, सो वापै गोली असरु थोरैऊ कत्ति ऐ। "

मैं– " ना कत्ति तौ न सई। देखें तौ। "

सब लोग–" पालागैं। "

'खुश रहो' कहकर मैं चल दिया। मेरे कानमें यह भनक पड़ी 'देखो, पंडितजी कैसे सुदे एं। गाँम वान्निसूं गाँमकी बोली बोल्तएं। हमाएं बु लोधे कौ लौंडा है, सो नौंक पढ़ि आऔएं, सो मुगली बानी बोल्तु ए और पास्सी (फ़ारसी) की टांग तोरैंई डात्तु ए।' गाँववाले विकट समालोचक होते हैं, और राय कायम करनेमें और राय बदलने में उन्हें देर थोड़े ही लगती है। जब बातें करनेपर आते हैं, तो अपनी बातको वेदवाक्य समझते हैं। गाँवके आसपास किसी रईसका बढ़िया मकान देख लिया, तो उनमें यहाँ तक बातें हो जाती हैं कि क्या आगरेका ताजमहल उसकी हवेलीसे भी अच्छा है! कोई छोटा-सा जंक्शन स्टेशन देख लिया, तो बस उसकी प्रशंसामें ही दूसरे से भिड़ पड़ेंगे और दूसरे मनुष्य द्वारा बताये स्टशन को तुच्छ समझेंगे। मेरे पीछे उन्होंने अपने उथले समालोचनातालमें न मालूम कितने गोते लगाये होंगे। मैं यह सोचता चला जाता था कि हिरन नहीं मरा, तो बड़ी भद्द होगी। चार-पांच बार मैं ही प्रयत्न कर चका हूँ; पर मेरे फ़ायर करनेकी बात लोगोंको मालूम न थी। यह बात मैंने चमारसे भी नही कही थी; पर मैं अपनी असफलताका कारण जानता था। बन्दूककी गोलीपर जादू-टोना नहीं चलता। भगवान कृष्णके पैर में बहेलियेका तीर तक न चूका, तो फिर आजकलकी रायफ़लोंसे निकली गोलीको कौन रोक सकता है? जब निशाना ठीक है, तब गोली निशानेपर क्यों नहीं लगेगी? पहले फ़ायर इसलिए गलत पड़े कि दो तो भागतेमें लिये थी। सोचा था, कहीं अन्धेके हाथ बटेर लग जाय, और दो-एकमें दौड़-धूपके कारण दम फूल जानेसे हाथ हिल गया होगा। आज या तो फ़ायर ही नहीं होगा, और, होगा तो संभालकर होशियारीके साथ। बस, इसी उधेड़बुनमें श्मशान समीप आया। निर्दिष्ट स्थान अभी चार फर्लांग होगा। यह खयाल करके मैं रुका और सोचने लगा कि किस ओरसे चलना चाहिए, जिससे हिरन देखने न पाये और मैं मारकी दूरीपर पहुँच भी जाऊँ। श्मशानकी ओर पूर्वसे जाना ठीक तय पाया। हिरन श्मशान के पश्चिमी कोनेकी ओर प्रायः रहा करता था, क्योंकि पूर्वकी ओर खेत थे, ज़हाँसे उसपर लुक-छिपकर आक्रमण किया जा सकता था।

पश्चिम की ओरसे खुला था, इसलिए, उधरसे उसके ऊपर वार करना कठिन था।

*　　　*　　　*

बैठ-बैठकर, एक-एक कदम सम्हाल-सम्हालकर रखता, ओसमें और मिट्टीसे टाँगें और जूते लथपथ किये, गेहूँके खेतकी मेंडके सहारे होता हुआ, उस स्थानसे, जहाँपर हिरन मिलनेकी आशा थी, चार सौ गजपर आ गया। चार सौ गजसे मैं प्रायः फ़ायर नहीं किया करता; पर यदि दूरी की एक इंच भी कम करता तो हिरनकी नज़रमें आनेका भय था। मैं चाहता तो था कि तीन सौ गजसे फ़ायर करूँ; पर इतने पास पहुंचनेके मानी थे हिरनको भगा देना। इसलिए पहले तो वहीं बैठकर दम लिया, और जब सांस ठीक हो गयी, तब सिरको टेढ़ाकर गेहुँके पौदोंके सहारे उस ओर देखा। नज़र जो पड़ी तो सामने एकान्तवासी पीडित, विरक्त, उपेक्षित तथा बहिष्कृत काला हिरन खड़ा था। अपूर्व दृश्य था। सूरज की ताजी और सुखदायिनी किरणें मुँहपर होती हुई पड़ रही थीं। वह पूर्वकी ओर मुँह किये खड़ा था। किरणें उसकी बगलपर पूरी नहीं पड़ती थी, इसलिए उसकी काली बगलें और भी काली प्रतीत होती थी, मानो किसीने तारकोल लगा दिया हो। हिरन निस्तब्ध खड़ा था। कदाचित् धूप ले रहा था। कभी-कभी एक-एक करके कान हिलाता था; प्रातः काल होनेसे मक्खियाँ नाक और आँखों पर आती होंगी। कभी-कभी एक टाँग भी हिलाता था। एक बार उसने पुट्ठेपर खुजलाया भी। पेटकी खातिर वह शीघ्र ही वहाँसे सटकने वाला था। उसका मुँह मेरी ओर न था। मैं उसके अगले पुट्ठेपर—हृदयपर—निशाना लेना चाहता था। गज़बका दृश्य था। एक तपस्वीकी भाँति वह अकेला खड़ा था। उसके भाइयोंने—नई जवानीकी मस्ती और उमंगमें—उसे झुंडके नेतृत्वसे न केवल च्युत ही कर दिया था, वरन् सींगोंकी मारसे उसे प्रणय-पन्थसे भी वंचित कर दिया था। जब अपनी ढलती जवानीमें उसे और हिरनोंसे मकाबिला पड़ा, तो उसे झुंडकी मुखियगिरीसे हाथ धोना पड़ा। उसकी प्रणय-केली के बाधक हिरनोंने पहले कुछ दिनों तक उसका कुछ खयाल

किया, क्योंकि वे पहले दंडित हो चुके थे; पर जब उसकी जवानीका सूर्य तपकर मध्यान्ह को पहुँच गया और धीरे-धीरे ढलने लगा, तब औरोंने उसको निकाल बाहर किया। शक्तिकी ही पूजा होती है। उसकी टागें अब इतनी बलवती न रहीं, जो उसे प्रतिद्वन्द्वियोंसे बचा सकतीं। सींगोंमें वह जोर न था, जिसका कोई खयाल करता। हिरानियाँ भी उसके पास न जाती थीं। गर्दन ऊँचीकर, कानोंको सतरकर, मस्त चाल चलकर उसे अब रिझाना न आता था। हार मानकर उसे अपना झुंड छोड़ना पड़ा, और उसने श्मशान की शरण ली। वहाँ पर खड़ा मानो वह अपनी बीती जिन्दगीका सिंहावलोकन कर रहा था। जब पैदा हुआ होगा, उसकी माँने कितने प्रेमसे चाट-चाटकर दूध पिलाया होगा। कुत्तों और भेड़ियोंसे बचानेमें उसे कितनी सावधानी रखनी पड़ी होगी। बड़े होकर जवानीमें एक पूरे झुंडका स्वामी होकर उसने कैसे सुख भोगे होंगे। हाँ, अब वह अपनी वर्तमान बेबसीको खूब समझता था। उस श्मशानमें और हिरन नहीं आते थे। उसके लिये वह श्मशान भूमी ऋष्यमूक पर्वतके समान थी। दरअसल दूसरे हिरनोंके लिए वहाँ कोई आकर्षण भी न था। एक झुंडके लिए स्थान न था, इसलिए वह वहाँ अकेला रहा करता। दिन-भर मील दो मीलकी परिधिमें खेतोंमें छिपकर चरा करता। शामको अँधेरेमें आता। रात-भर रहकर सुबह फिर चला जाता। चौकन्ना वह इतना था कि आदमीकी सूरत देखकर भागता था – चाहे वह आदमी शिकारी हो अथवा भिखारी या किसान। इसलिए वह शिकारियोंके हाथ न चढ़ता था। उसकी खालकी अपेक्षा उसके सींग बहुत अच्छे थे, इतने लम्बे कि उस इलाकेमें मैंने वैसे सींग नहीं देखे। हजारों मल्लयुद्धोंमें उसने अपने प्रतिपक्षियोंको हराया था। उसके सींगोंके सौन्दर्यपर हिरनियाँ मोह जाती थी, और मैं भी उन्ही सींगोंके लालचसे आया था। रायफ़ल भरी थी। चार सौ गजका निशाना लगाया। हिरन अचल, उसी आसनपर, खड़ा था। सामने उसकी बगल थी। मैं घोड़ा (Trigger) खींचनेवाला ही था कि पासके एक खेतसे लोमड़ी "खौ खौ खौ; खौ खौ खौ" बोलती हुई मेरी ओर आ निकली; पर वह उसकी आवाज का अभ्यस्त था।

नर-लोमड़ी मादाका आह्वान कर रही थी। दिसम्बर-जनवरी उनके जोड़ेका समय होता लोमड़ी मेंडपर होती हुई ज्योंही एकदम मेरी मेंडपर मुड़ी, तो मुझे देख दुम दबाकर श्मशान की ओर भागी। हिरनने चौकन्ना होकर छलांग भरी, और जिस ओर से लोमड़ी भागी थी, उसी ओर वह खड़ा होकर देखने लगा।

* * *

फ़ायर हुआ। चारों ओर आवाज़ फैल गई। आसपासके हिरनोंके दिल दहल गये। काला हिरन उछला। खूनके फ़ौवारे चल गये। एक बार वह गिरकर रेंगा। पैर छटपटाता था, और अपने भूशायी शीशको धुन रहा था। गोली लगी थी; पर हृदय पर नहीं—पेटसे तनिक नीचे इसलिए यह घबराहट थी। मैं फ़ायर करके खड़ा हुआ इधर-उधर देखने लगा; पर वहाँ पर मेरे निशानेको देखनेवाला प्राकृतिक शक्तियोंके अतिरिक्त और कोई न था। जब मैं हिरनके पास पहुँचा, तब उसके सींग और भी बड़े मालूम हुए। कोई पच्चीस-छब्बीस इंचके ! मैं वहाँ बैठा ही था कि हिरन एकदम चौंककर उठा और दुलकी चालसे भागा।

यह देखकर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। मरा-मराया हिरन उठ भागा। बेहद खून पड़ा था ; पर कोई आश्चर्यकी बात न थी। गोली अंतड़ियोंमें लगी थी। सब पेट भुन-सा गया होगा। धक्के के मारे गिर गया। मरेगा वैसे भी। यदि में वहाँ न आता, तो भी मर जाता; परन्तु मेरे आने से उसने अपनी बची-खुची ताकत लगायी और उठ भागा। मैंने पीछा किया। चोटके कारण तेज़ तो जा ही नहीं सकता था। आगे-आगे चला चाता था, और मुड़-मुड़कर मेरी ओर कातर दृष्टि से देखता जाता था। अँतड़ियाँ उसके पेटके बाहर लटक रही थी। मुँह फाड़कर हाँफने लगा। मुझसे यह दृश्य न देखा गया। यदि किसी को मारना हो, एकदम मारना चाहिए। धीरे-धीरे किसीकी जान लेना बहुत ही बुरा है। झट से एक दूसरी गोली मारी, और वह धड़ामसे गिर गया।

चमार खाल खींच रहा था। ऊपर गिद्ध मंडरा रहे थे। मांसकी तिक्का-बोटी तो वहीं हो गई; बल्कि बहुतसे उससे वंचित रहे। प्राकृतिक म्युनिसिपैलिटी सदस्यों–गिद्धों–को अँतड़ियाँ ही मिलीं।

खाल और सींग रखाकर गाँव की ओर आया। सींग और खाल बनने के लिये देहरादून भेजे गये, और बनकर आ भी गये। बहुत बढ़िया थे; पर मुझे उनसे हिरन की अन्तिम घिडयोंकी वह कातर दृष्टि स्मरण हो जाती थी। उनका अपने पास रखना असह्य था, इसलिए वह खाल और सींग एक अमेरिकन मित्रको भेंट कर दिये।

अमेरिका में वे सींग दीवारपर लगे अब भी उस हिरनका स्मरण दिलाते हैं, और कदाचित् मेरे मरनेके बाद भी–जब इस शरीरके पंचतत्त्व उस हिरनके पंचतत्त्वके समान परिमाणुओंसे मिल जायँगे वे श्मशानके सींग मेरी उस निर्दय हत्याके मूक स्मारक बने रहेंगे।

# रूपा की आजी

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

कुछ दिन चढ़े मैं स्कूल से आकर, आँगन में पलथी मारे चिउरा-दही का कौर-पर-कौर निगल रहा था कि अकस्मात् मामी ने मेरी थाली उठाली, उसे घर में ले आईं। पीछे-पीछे अवाक् उनके साथ लगा था; थाली रख मुझसे बोलीं–"बस यहीं खा, बाहर मत निकलना, रूपा की आजी आ रही हैं; नजर लगा देंगी! समझा न?"

मैं समझा क्या खाक? हाँ, रूपा की आजी से कौन नहीं डरता? कौन बच्चा उनकी बड़ी-बड़ी आँखें देखकर न सिहर उठता? वह डायन हैं– गाँव भर में यह बात प्रसिद्ध है। वह जिसको चाहें, जादू की एक फूंक में मार सकती हैं। बच्चों पर उनकी खास नजरे-इनायत रहती हैं। कितने बच्चों को, हँसते-खेलते शिशुओं को, उनकी ये बड़ी-बड़ी आँखें निगल चुकी हैं। बड़ी-बड़ी आँखें!

रूपा की आजी की यह है सूरत-शक्ल—लम्बी गोरी औरत; भरा-पूरा बदन। हमेशा साफ सुफेद, बगाबग कपड़ा पहने रहती। उस सुफेद कपड़े के घेरे से उनका चेहरा रोब बरसाता। फिर, उनकी बड़ी-बड़ी आँखें; जिनपर लाली की एक हल्की छाया! पूरे बदन का ढाँचा मर्दों के ऐसा,

मानों धोखे से औरत हो गई हों। जिस गाँव से यह आई हैं, वहाँ लोग कहते हैं, औरतों का ही राज है। लोगों ने मना किया उनके ससुर को, वहाँ बेटे की शादी मत कीजिये। किन्तु वह भी पूरे अखड़िया थे—जिद कर गये, देखें, कैसी होती है वहाँ की लड़की।

रूपा की आजी ब्याह के आई। आने के थोड़े ही दिनों बाद ससुरजी चल बसे। कुछ दिनों के बाद रूपा के दादाजी भी। इन दोनों की मौत अजीब हुई। ससुरजी दोपहर में खेत से आये, रूपा की आजी ने थाली परस कर उनके सामने रखी। दो कौर खा पाये थे कि पेट में खोंचा मारा, दर्द हुआ, खाना छोड़कर उठ गये। शाम होते-होते उसी दर्द से चल बसे। रूपा के दादाजी एक बरात से लौटे, थके माँदे ; नवोढ़ा पत्नी—रूपा की आजी—ने हँसकर, एक गिलास, पानी पीने को दिया। पानी पीते ही सिर धमका ज्वर आया, उसी ज्वर से तीन दिन के अन्दर स्वर्ग सिधारे।

पहली घटना से ही कानफूसी शुरू हो गई थी; दूसरी घटना ने बिल्कुल सिद्ध कर दिया—रूपा की आजी डायन हैं, वे ही दोनों को जादू के जोर से खा गई हैं!

रूपा के पिताजी का जन्म उसके तीन-चार महीने बाद हुआ। रूपा की आजी की गोद भरी—आखिर इस डायन ने अपना खानदान बचा लिया, लोगों ने कहना शुरू किया। बेटे को इस डायन ने बड़े नाज से पाला, पोसा, बड़ा किया; उसकी शादी की—धूमधाम से। किन्तु, कैसी है यह चुड़ैल! शादी का बरस लगते-लगते बेटे को भी खा गई—मुछउठान जवान बेटे को! कितना सुन्दर, गठीला जवान था वह! कुश्ती खेलकर आया, इसके हाथ से दूध पिया। खून के दस्त होने लगे। कुछ ही घंटों में चल बसा। उसके मरने के बाद इस 'रूपा' का जन्म हुआ और रूपा अभी प्रसूतिगृह में ही. कें-कें कर रही थी कि उसकी माँ चल बसी! 'बाप रे' रूपा की आजी कैसी बड़ी डायन हैं। डायन पहले अपने ही घर को स्वाहा करती हैं!

जवान बेटे की मृत्यु के बाद, रूपा की आजी में अजीब परिवर्तन हुआ। हमेशा आँखें लाल रहतीं; छोटी-छोटी बात में आँसू की धारा बह निकलती; ओठों में कुछ बुदबुदाती रहतीं; दोनों जून स्नान कर भगवती का पिंड लीपतीं, धूप देतीं; बहुत ही साफ कपड़ा पहनतीं; जिस जवान को देखतीं, देखती ही रह जातीं; जिस बच्चे पर नजर डालतीं, मानो आँखों में पी जायँगी! लोगों ने शोर किया—" अब इसका डायनपन बिल्कुल प्रकट हो गया। डरो, भागो—रूपा की आजी से बचो! "

रूपा की आजी से बचो—लेकिन, बचोगे कैसे? भर दिन रूपा को गोद लिये, कंधे चढ़ाये, या उसकी छोटी अँगुली पकड़े यह इस गली से उस गली, इस घर से उस घर आती जाती ही रहती हैं। न एक व्रत छोड़ती हैं, न एक तीरथ। हर उत्सव में बिना बुलाये ही हाजिर! उफ, यह डायन कब मरेगी? कब गाँव को इससे नजात मिलेगी।

मन-ही-मन यह मनाया जाता, किन्तु ज्योंही रूपा की आजी सामने आई नहीं कि उनकी खुशामदें होतीं। कहीं वह नाराज न हो जायँ। अपने ससुर, पति, बेटे और पतोहू को खाते जिसे देर न लगी, वह दूसरे के बाल-बच्चों पर क्यों तरस खायगी? स्त्रियाँ उन्हें देखते काँप उठतीं, किन्तु ज्योंहीं वह उनके सामने आई कि 'दादीजी' कहकर उनका आदर-सत्कार करना शुरू किया। इस आसन पर बैठिये, जरा हुक्का पी लीजिये, सुपारी खा लीजिये, यह सौगात आया है, जरा चख लीजिये, आदि आदि। रूपा की की आजी कुछ सत्कार स्वीकार करतीं, कुछ अस्वीकार! उनकी अस्वीकृति आग्रह नहीं मानती थी। अस्वीकृति! और लोगों में थरथरी लग गई। फिर, परिवार ही ठहरा, अगर बरस-छः महीने में किसी को कुछ हुआ, तो रूपा की आजी के सिरपर दोष गिरा?

कितने ओझे बुलाये गये इस डायन को सर करने के लिए। उनके बड़े-बड़े दावें थे—डायन मेरे सामने होते ही नंगी नाचने लगेगी; डायन के कोंचे

से आप-ही आप आग जल उठेगी; डायन खून उगलने लगेगी; डायन पागल होकर आप-ही-आप बकने लगेगी। ओझा आये, तांत्रिक आये, टोने हुए तंतर हुए। तेली के मसान की लकड़ी, अड़हुल फूल, उलटी सरसों का तेल, मेढ़क की खाल, बाघ के दाँत—क्या-क्या न इकट्ठे किये गये। ढोल बजे, झाँझ बजे, गीत हुए, देव आये, भूत आये, देवीजी आई! किन्तु रूपा की की आजी न पागल हुईं; न नंगी नाची, न उनकी देह पर फफोले उठे। ओझा गये, तांत्रिक गये, कहते हुए–"उफ, यह बड़ी घाघ है। बिना कारू-कमच्छा गये, इसका जादू हटाया नहीं जा सकता।" कई ओझे इसके लिए रुपये भी ऐंठते गये, किन्तु रूपा की आजी जस-की-तस रहीं।

मैं बड़ा हुआ, लिखा-पढ़ा, रँगरेजी (अँग्रेजी) विद्या ने भूत-प्रेत पर से विश्वास हटाया, जादू-टोने पर से आस्था हटाई। कहना शुरू किया–"यह गलत बात, रूपा की आजी पर झूठी तुहमत लगाई जाती है। बेचारी के घर में एक के बाद एक आकस्मिक मृत्युएँ हुईं, उसका दिमाग ठीक नहीं। आँखों की लाली या पानी डायनपन की नहीं, उसकी करुणाजनक स्थिति की निशानी है। बच्चों को देखकर, दुलराकर, जवानों को घूर घूर कर वह अपने जवान बच्चे की याद करती या इसे भूलने की कोशिश करती है। पूजा-पाठ सब उसी की प्रतिक्रिया है। दुनियाँ में भूत कोई चीज नहीं, जादू-टोना सब गलत चीज।" लेकिन, मेरी बात कौन सुनता है? एक दिन मामी मेरी इस बकझक से व्याकुल होकर बोलीं–

"हाँ, तुम्हें क्या, तुम्हारे लिए जरूर जादू-टोना गलत है। भगवान तुम्हें चिरंजीवी करें। किन्तु, उनसे पूछो, जिनकी कोख इस डायन ने सूनी कर दी; जिनके बच्चों को यह जिन्दा चबा गई; जिनके हँसते-खेलते घर को इसने मसान बना दिया।"

कहते-कहते उनकी आँखें भर आईं; कुछ गरम-गरम बुँदें आँखों से निकल कर जमीन पर ढुलक रहीं। फिर बोली–

"उस पड़ोसिन की बात है। उसकी बेटी ससुराल से लौटी थी–गोद भरकर! एक दिन उसका छः वर्ष का नाती आँगन में किलक रहा था। कितना सुन्दर था वह बच्चा! जैसे विधना ने अपने हाथों सँवारा हो। जो देखता, मोह जाता। कई दिन मेरे घर आया था–जबरदस्ती मेरे कंधे पर चढ़ गया, दही माँग कर खाया। तुतली-तुतली बोली, चिकने चिकने दुधमुँहें दाँत। हँसता तो इँजोरिया हो जाती। किलकिलाता, तो हरसिंगार झड़ने लगते। और, वैसे बच्चे को.......।

"हाँ एक दिन वह बच्चा अपने आँगन में था, कि यह भुतनी पहुँची। यँह भुतनी-हाँ, इसी तरह आँसू बहाती, होंठ हिलाती, रूपा का हाथ पकड़े हुई। इसे देखते ही उसकी माँ का मुँह सूख गया; नानी डर गई; चाहा, बच्चे को छिपा दें; किन्तु वह बच्चा छिपाने लायक भी तो नहीं था! ऊधमी, नट-खट। झटपट दौड़ा आया, इस चुड़ैल के कंधे पर चढ़ गया। चढ़कर इसके बालों को नोचने, गरदन को हिलाने और अपने छोटे-छोटे पैरों से इसे एँड़ियाने लगा। बच्चे की इस हरकत से भुतनी हँस पड़ी–पहली बार लोगों ने इसे हँसते देखा। फिर खुद घोड़ा बनी, बच्चे को सवार बनाया और बहुत देर तक घुड़दौड़ करती, बच्चे को हँसाते-खेलाती रही। बार-बार उसे छाती से लगाती, कहती ऐसा बच्चा दूसरा न देखा। आह मेरा...... किन्तु, बात बीच ही में काट कर फूट-फूट कर रो पड़ी। उसे रोते देख बच्चे ने ही गुदगुदी लगाकर, रिझाकर, भुलाकर उसे चुप कराया। चुड़ैल घर चली, आशीर्वाद देती हुई –

"जुग-जुग जीये यह बच्चा, तुम्हारी गोद हमेशा भरी रहे बेटी; भरी रहे, इसी तरह सोने की मूरत उगलती रहे।" माँ भौंचक, नानी के जैसे जी में जी आया।

"किन्तु जानते हो, इसके बाद क्या हुआ। कुछ दिनों के बाद लड़के को सूखा रोग लग गया। कहाँ गया उसका वह रूप, वह रंग, वह चुहल,

वह हँसी सूखकर काँटा हो गया, दिन-रात चें-चें किये रहता जो उसे देखते, आँसू बहाते और एक दिन आसुओं की बाढ़ लाकर वह...... उफ !

"उस दिन उसकी माँ को तुम देखते। पागल हो गई थी बेचारी! बच्चे की लाश को पकड़े थी, छोड़ती नहीं थी। किसकी हिम्मत जो उससे बच्चा माँगे? आँसू सूखकर ज्वाला बन गये थे—उसकी आँखों से चिनगारी निकल रही थी। बच्चे को छाती से चिपकाये थी, जैसे वह दूध-पीया बच्चा हो। अंटसंट बोलती, बच्चे के मुँह में छाती देने की कोशिश करती! उसे चुप देख कभी-कभी चिल्ला उठती-जब चिल्लाती, मालूम होता, उसका कलेजा फट रहा है, सुननेवालों के भी कलेजे फटते.... "

मैं देख रहा था, मामी का कलेजा आज भी फटा जा रहा है। किस्से का अंत शब्द से नहीं, आँसुओं के ज्वार से हुआ।

और, मामी के बच्चे को भी तो इसी ने खाया—वह बोलती नहीं है, किन्तु उसके करुण चेहरे की एक-एक भावभंगी—आँसू की एक-एक बूँद—यह कह रही है—कम्बख्त को बच्चे खाकर भी संतोष न हुआ, मामी की कोख में जैसे इसने राख भर दी। तब से एक भी बेटा न हुआ; बहुत जंत्र-मंत्र के बाद हुई तो दो बेटियाँ!

मामी की क्या बात; एक दिन मामाजी भी मेरे उपर्युक्त तर्कों पर नाराज हुए और अपनी आँखों-देखी घटना सुनाई—

"वह ऊँची जगह देखते हो? वहाँ एक दुसाध आ बसा था। बूढ़ा था, दो नौजवान लड़के थे उसके; घर में बीबी, पतोहू। दोनों बेटे बड़े ही कमाऊपूत। गठीले जवान। बूढ़ा भी काफी हुनरमन्द। थोड़े ही दिनों में गाँव में उसकी पूछ हो गई। बाहु का बल था। कमाते, खाते। नेक स्वभाव के—न किसी से झगड़ा, न झमेला। सबको खुश रखने की कोशिश करते; सबके काम कर देते।

"एक दिन वह बुढ़िया—तुम्हारी रूपा की आजी—पहुँची और बोली, जरा आज मेरा काम कर दो। बूढ़े ने देखते ही सलाम किया, बैठने को कुश की चटाई रख दी। बुढ़िया न बैठी— 'दुसाध से हड्डी छुला जाती है; फिर मैं बाभनी।" बूढ़ा कुछ न बोला सिर्फ अर्ज किया—आज तो दूसरे बाबू को वचन दे चुका हूँ, कल आपका काम हो जायगा। बुढ़िया ने जिद की—नहीं आज ही मेरा काम होना चाहिए। बीच ही में बड़ा लड़का बोल उठा— 'दुसाध से हड्डी छुलाती है, तो घर क्या नहीं छुलायगा?' बुढ़िया तमक उठी!—'तुम मेरा अपमान करते हो। इसलिए न कि मैं निपूती हूँ, मुझसे तुम्हें क्या डर, मेरा लड़का होता...।' बुढ़िया पहले गरजी, अब बरस रही थी। बूढ़ा दुसाध भौंचक। हाथ जोड़कर आरजू-मिन्नत करता रहा— 'अभी चलता हूँ, हम अभी चलते है, बाबू का काम कल होगा, आज आप ही का।' किन्तु, बुढ़िया वहाँ जरा भी क्यों ठहरती? घर लौटी।

"इसी रास्ते वह जा रही थी।"—मामाजी ने कहा—"मैंने देखा, उसके होंठ जल्द-जल्द हिल रहे थे, आँखें लाल थीं, आँचल से आँसू पोंछती जाती। पीछे पीछे बूढ़ा दौड़ा जा रहा था। बूढ़े को रोककर मैंने दरियाफ्त किया, उसने सारी बातें बताई। वह काँप रहा था—'बाबू, बाल-बच्चे वाला हूँ, न जाने क्या हो जाय?'

"और विश्वास करोगे, तुम्हारी रँगरेजी विद्या इसका क्या माने बतायगी, कि उसी रात दुसाध के बड़े बेटे को साँप ने काट लिया।

"भोर में देखा, हाय वह पट्ठा बेहोश पड़ा है। समूचा शरीर पीला पड़ गया है, मुँह से झाग निकल रहा है। गाँव-गाँव से साँप का विष उतारने वाले पहुँचे है। कोई जोर-जोर से मंत्र पढ़ रहा है, कोई कोई फटकार रहा है, कोई जड़ी पीसकर पिलाने की कोशिश में है, कोई उसकी नाक में कुछ सुँघा रहा है। जब तब वह आँखें खोलता है, रह-रहकर हाथ-पैर फटकारता है, फिर निस्तब्ध हो रहता है। निस्तब्धता निस्पंदता में और निस्पंदता

निर्जीवता में बदलती जाती है। बूढ़ा बाप छाती पीट रहा है, छोटा भाई दाढ़ मार कर रो रहा है। माँ और स्त्री की गत का क्या कहना! विष उतारने वाले कहते है, 'हम क्या करें? साँप का विष उतरता है न? यह तो आदमी का विष है! सीधा जादू, ठीक आधी रात को लगाया गया है, उतर जाय, तो भाग।' बूढ़े का वैसा भाग्य नहीं था। धीरे-धीरे हम लोगों के देखते-देखते, उसके जवान बेटे की अर्थी उठ कर रही। दूसरे ही दिन उसका सारा परिवार गाँव छोड़कर चला गया।

"अरे, यह बुढ़िया नहीं, काल है! आदमी नहीं, साँपिन है। चलती-फिरती चुड़ैल। बाभनी है, नहीं तो, इसे जिन्दा गाड़ देने में कोई पाप नहीं लगता!"

मैं चुप! भावना पर दलील का क्या असर हो सकता है भला?

* * *

शिवरात्रि का यह मेला। लोगों की अपार भीड़—बच्चे, जवान, बूढ़े; लड़कियाँ, युवतियाँ, बूढ़ियाँ। शिवजी पर पानी, अक्षत, बेलपत्र, फूल, फल। फिर, एक ही दिन के लिए लगे इस मेले में घूम-फिर; खरीद-फरोख्त। धक्के पर धक्के। चलने की जरूरत नहीं, अपने को भीड़ मे डाल दीजिये, आप-ही-आप किसी छोर पर लग जाइयेगा। बच्चों और स्त्रियों की अधिकता; उन्हीं के लायक ज्यादा सौदे। खँजड़ी, पिपहा, झुनझुने; मिट्टी की मूरतें, रबर के खिलौने, कपड़े के गुड्डे, रंगीन मिठाइयाँ, बिस्कुट, लेमनचूस। टिकुली, सेंदुर, चूड़ियां; रेशम के लच्छे, नकली गोट, चकमक के पत्ते; आईना, कंघी, साबुन; सस्ते एसेंस और रंगीन पाउडर। भाव-साव की छूट, हल्ला गुल्ला। गहनों के झमझम में चूड़ियों की झनझन। सारियों की सरसर में हँसी की खिलखिल।

कहीं नाच हो रहा; कहीं बहुरूपिये स्वाँग दिखा रहे; घिरनी और चरखी पर बच्चे झूले का मजा लूट रहे।

अकस्मात् एक ओर से शोर। "पगली-पगली-पगली।" "छोड़ो-छोड़ो-छोड़ो।" "डायन, डायन, डायन, डायन।" "मारो, मारो-मारो।"

एक औरत भागी जा रही है, अधनंगी, अधमरी। लोग उसका पीछा कर रहे हैं। क्या बात है?

मेले में आई एक युवती अपने बच्चे को एक सखी के सुपुर्द कर सौदा करने गई थी। सखी ज़रा चंचल स्वभाव की थी। स्त्रियां चंचल होती ही हैं। सखी 'लाल छड़ी' की रंगीन मिठाई बेचनेवाले की बोली पर भूल गई– "मेरी लाल छड़ी अलबत्ता; मैं तो बेचूँगा कलकत्ता!" इधर बच्चा उसकी अंगुली छुड़ाकर, धीरे से वहाँ से निकल कर झुनझुनेवाले के पास पहुंच गया। जब सखी का ध्यान लालछड़ी से टूटा, तो वह व्याकुल होकर बच्चे को खोजने निकली। देखती क्या है, एक बुढ़िया उस बच्चे को गोद में लिये झुनझुने दे रही और मिठाइयाँ खिला रही! कैसी उसकी सूरत–फटाचिटा कपड़ा, धूल से भरा शरीर, बिखरे बाल, लाल-लाल आँखें, बड़ी-बड़ी टाँग, बड़ी-बड़ी बाँह! उसे देखते ही, वह चीख पड़ी–"डायन!" बुढ़िया चौंकी–गुर्राई! "एँ, क्या बोलती है?" किन्तु वह चिल्लाये जा रही थी–"डायन डायन, डायन!" हल्ला देख बच्चा चीखने लगा। बुढ़िया ने बच्चे को कन्धे पर लिया! यह देख वह बुढ़िया के नजदीक पहुँच कर बच्चे को उससे छीनने की कोशिश करने लगी। एक हल्ला, एक शोर, एक गौगा। अब बच्चा सखी की गोद में, और बुढ़िया को लोग पीट रहे हैं। बच्चा बार-बार उसकी ओर देखकर 'बुदिया,'— 'बुदिया' कह उठता है, मानों उसकी मार पर तरस खाता हो, उसकी गोद को ललक रहा हो। किन्तु कौन उस पर ध्यान देता है।

बुढ़िया भागी जा रही है; स्त्रियाँ, बच्चे, मर्द, उसके पीछे लगे हैं। थोड़ी-थोड़ी देर पर वह रुकती है; दाँत दिखाती है; हाथ जोड़ती है; कभी-कभी गुस्सा होकर ढेले उठाती है। वह सिर्फ ढेले उठाती है। लोग उस पर ढेले फेंकते हैं। इसी भागाभागी में वह एक ऐसी जगह पहुंचती है, जहाँ पहले एक कुँआ था, अब उसकी गच खराब हो गई थी वह भथ रहा था। भागने में व्याकुल, उसका ध्यान उस ओर न रहा: धड़ाम से उस कुएँ में जा रही!

भीड़ रुकती है! कोई कहता है–"मरने दो।" कोई कहता है–"निकालो।" जब तक निर्दयता पर करुणा की विजय हो, तब तक वह जल-समाधि ले चुकती है।

यह उसकी लाश है। किसकी? बुढ़िया की लाश–रूपा की आजी की लाश!

वह यहाँ कहाँ? रूपा की शादी बड़ी धूम से की उसने। सारी जायदाद बेचकर। जिस भोर में रूपा की पालकी ससुराल चली, उसी शाम को वह घर छोड़कर चल दी। कहाँ? कौन जाने? इतने दिनों तक वह कहाँ-कहाँ की धूल छानती, आज पहुँची थी-इस मेले में। क्यों? क्या रूपा को देखने? उसके बच्चे को देखने! क्या वह रूपा का बच्चा था? उसने परिचय क्यों न दिया?

छोड़िये उस चर्चा को।

बहुत दिन हुए, रवि बाबू की एक कहानी पढ़ी थी। एक भद्र परिवार की महिला हैजे में मर गई। लोग जलाने श्मशान को ले गये। चिता सजाई जा रही थी कि वर्षा होने लगी। चिता छोड़कर लोग बगल की अमराई की मँडैया में छिपे रहे। काली रात थी। जब वर्षा खतम हुई, उन्होंने पाया, चिता से मुर्दा गायब! क्या सियार खा गये? खोज-ढूँढ फजूल गई। किन्तु, किस तरह से बाबू साहब से कहा जाएगा कि उनकी असावधानी से मुर्दा गायब हुआ? झूठ-झूठ चिता में आग लगाकर चले आये। इधर बेचारी महिला पानी की बूंद से जीवन पा चिता से उठी। दिन-भर खेतों में छिपी रही, भद्रकुल की महिला थी। रात में जब घर पहुँची, दरवाज़ा खट-खटाया। उसकी बोली सुन, लोग दौड़े–अरे, भूत, भूत! –अरे- भूत, भूत।–नैहर पहुँची, वहाँ भी भूत-भूत; बहन के घर पहुँची, वहाँ भी भूत-भूत। आखिर उसने अपने को गंगा की गोद में सिपुर्द कर दिया।

क्या 'रूपा की आजी' कुछ इसी तरह लोकोपवाद का शिकार न हुई? घटनाओं ने उसके साथ साजिश की, लोगों ने जल्लाद का काम किया!

# कल की बात

**अन्नपूर्णानन्द वर्मा**

समय जाते देर नहीं लगती। पन्द्रह वर्ष वीत चुके, पर जान पड़ता है कि अभी कल की बात है। सन् १९१६ में मैं तीसरी बार इन्ट्रेन्स की परीक्षा देने बैठा था।

दो साल मैं लगातार फेल हो चुका था। और चीजों में ज्यों-त्यों पास भी हो जाता, पर गणित का विषय मुझे अन्त में ले डूबता। छोटे दर्जों में भी इसने मेरे रास्ते में रोड़े अटकाए, परीक्षाओं में इसने मेरे साथ सदा अडंगा नीति से काम लिया, पर मैं किसी-न-किसी करवट से दर्जा बराबर चढ़ता ही गया। इन्ट्रेन्स में पहुंचना था कि यह मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ गया।

लोगों का ऐसा खयाल था और अब भी है—कि प्रतिभा नाम की चीज मेरे बाँटे कभी पड़ी ही नहीं, पर मैं इसे मानने के लिए तैयार नहीं हूँ। ऐसा सोचना भी मेरे-ऐसे व्यक्ति के प्रति घोर अन्याय करना है जिसने सातवीं कक्षा में 'पेट' पर निबन्ध लिख लाने की आज्ञा पाकर यह दोहा लिखा हो—

> नित रितवत नित ही भरत, जिमि चुअना कंडाल।
> इति न होति अति अजब गति, पेट गजब चण्डाल॥

हाँ, इतना मैं स्वयं कहूँगा कि मेरी प्रतिभा सर्वतोमुखी नहीं थी। गणित की ओर से वह रूठी हुई दुलहिन-सी मुँह फेर लेती।

खैर, गणित की कृपा से दो साल फेल होकर तीसरे साल मैं फिर इन्ट्रेन्स की परीक्षा देने बैठा। गणित के ज्ञान से अब भी बिल्कुल कोरा था; पर परीक्षा देने चला गया। एक आदत-सी पड़ गई थी, जो परीक्षा-भवन तक मुझे खींच ही ले गई।

गणित का पर्चा मेरे सामने रख दिया गया। पर्चा पढ़ने के पहले मैंने त्रिकुटी में ध्यान लगाकर भगवान से प्रार्थना की कि 'हे प्रभो आनन्ददाता ज्ञान मुझको दीजिये कि मैं दो एक सवाल तो ठीक कर सकूँ—और नहीं तो शीघ्र सारे गार्डों को दूर मुझ से कीजिए कि मैं आसानी से नकल ही कर सकूँ।'

इसके बाद मैं पर्चे को एक बार पढ़ गया। पढ़ते ही ऐसी इच्छा हुई कि अपना सिर खुजलाऊँ, फिर मैंने सोचा कि परचे को दुबारा पढ़ लूँ, तब निश्चिंत होकर सर खुजलाना शुरू करूँ। मैंने यही किया, दुबारा पढ़ गया। दुबारा पढ़ डालना महज एक रस्म की बात थी, अगर मैं सौ बार भी पढ़ता तो इसी नतीजे पर पहुँचता कि इस कमबख्त परचे का एक सवाल भी मेरे लिए नहीं बनाया गया है।

मैंने कलम को कान पर चढ़ा लिया और हाथ पर हाथ रखकर बैठा रहा। मन में उस परमात्मा का गुणगान करने लगा जिसने गणित, गोजर और गण्डमाला ऐसी चीजें संसार को दीं। निराशा और निस्सहायता के भाव मेरे मन-मुकुर को धूमिल करने लगे।

और परीक्षार्थियों की कलमों ने घुड़दौड़-सी मचा रक्खी थी, पर मेरी कलम अभी तक टस-से-मस भी न हुई। कान पर से उतारकर मैं उसे कापी के पास ले आया, पर उसने आगे बढ़ने से कतई इनकार कर दिया। मैं हिम्मत न हारा और कलम सम्हाल बैठा ही रहा। मुझे इस तरह बैठा देखकर एक गार्ड ने कहा—'क्यों व्यर्थ कापी को कलम से धमका रहे हो?'

मैं चुप रहा। कहाँ तो मेरे गले में फाँसी पड़ी है और कहाँ उन्हें हँसी सूझ रही है। अपना वक्त सब कुछ कराता है, न मैं ऐसा होता, न ये मेरे ऊपर अपनी जवाब माँजते !

मैं कभी पर्चे की ओर देखता, कभी कापी की ओर और कभी कलम की ओर, पर तीनों ढाक के तीन पात की तरह अलग ही नजर आते। इन तीनों का अस्तित्व एक दूसरे का विरोधी जान पड़ता था। मैंने कापी से कई बार अपनी लेखनी का साक्षात् कराया, पर कुछ काम न निकला।

मैंने देवता, पित्तर, भुइयां, भवानी सबको मनाया, पर किसी ने स्थिति को सुलझाने की कोशिश न की। मैंने आधे घण्टे के अन्दर कलम में चार नई निबें लगाईं, कि शायद इसी तरह उनकी अकर्मण्यता दूर हो, पर सब उपचार व्यर्थ गये। मैंने सोचा कि लाओ पर्चे को कापी पर नकल कर दूं और घर का रास्ता लूँ, पर 'जब तक साँस तब तक आस' ने ऐसा न करने दिया। मेरी इस समय ऐसी दशा थी कि परीक्षक महोदय यदि मेरे सामने आ खड़े होते तो उन्हें मामा पुकार बैठता, सुना है कि साँप को भी मामा पुकारे, तो दया आ जाती है।

जब मनुष्य निरुपाय हो जाता है, तो मूर्खता पर कमर कसता है। संकटापन्न अवस्था में अच्छे विद्वानों की बुद्धि भी मोच खा जाती है; तो मेरी क्या बिसात मैं अपने को किसी बुद्धिमान का इजारबन्द होने योग्य भी नहीं समझता !

मैंने जब अच्छी तरह देख लिया कि और कोई चारा नहीं है तब यही निश्चय किया कि परीक्षक के नाम कापी में एक पत्र लिख दूँ और लिखकर घर का मार्ग पकड़ूँ।

ज्यों-ज्यों मैं गौर करता था, मुझे यह कार्यक्रम समुचित और उपयुक्त जँचता था। इस कार्यक्रम की विशेषता यह थी कि इसमें हानि कुछ भी नहीं थी, क्योंकि परीक्षक यदि मेरी धृष्टता से चिढ़ जाता, तो अधिक से अधिक

मुझे फेल कर देता, पर यह कौन-सी- नई बात हा जाती। फेल होना तो यों भी मेरी 'परीक्षा-सिद्ध' अधिकार था। इसके विपरीत यदि मेरा पत्र पढ़कर दया मे द्रवीभूत होकर कुछ नम्बर दे निकलता, तब तो परीक्षाफल निकलने पर ही मैं दिखाई पड़ता। यह कोई असम्भव बात नहीं थी. परीक्षक बड़ा आदमी होता है, और सुना है बड़े लोगों के 'दिल दरियाव' में अक्सर अनायास दया कि मौज उठने लगती है।

मैं इस पत्र में परीक्षक के बाल-बच्चों की खैर मनाता और लिखता कि मेरी नौका मँझधार में है और आप ही उसके खेवैया हैं। इन बातों के अतिरिक्त मैं एक बात बड़े मार्के की लिखने वाला था। वह यह कि इस साल मेरी शादी होने वाली है, अगर फेल हो जाऊँगा, तो फिर जाने कितने दिन के लिए शादी टल जायगी, इसलिए यदि दया करके आप मुझे पास कर देंगे, तो अप्रत्यक्ष रूप से आपको कन्यादान का भी फल होगा।

मैं सोच रहा था कि इस पत्र को लिखना शुरू करूँ, कि किसी ने धीरे से मेरे कन्धे पर हाथ रखा। मैंने पीछे घूमकर देखो तो एक गार्ड महाशय को खड़ा पाया। मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि वे और गार्डों की तरह हृदय-हीन नहीं जान पड़ते थे। उनकी दृष्टि में दया और स्पर्श में समवेदना थी।

वे चल गये पर मेरे हृदय में आशा का संचार कर गये। मुझे निश्चय हो गया कि वे मेरे लिए कुछ करेंगे। यही हुआ भी। वे थोड़ी देर में टहलते हुए मेरे पास आये और बड़ी सफाई से एक सोखते का ठुकड़ा मेरे पास फेंककर चल दिए।

मैंने उस सोखते के टुकड़े को बड़ी सावधानी से उलटकर देखा। उस पर पर्चे के दो सबसे कठिन प्रश्नों के उत्तर उनकी संक्षिप्त विधि के सहित पेंसिल के बहुत हल्के हाथ से लिखे हुए थे।

अब क्या था! दो सवाल तो मैंने मार लिये। बाकी बच गये चार, कुल छः करने थे। इनसे कैसे निपटा जाय। अब आगे की सुधि लेनी थी। मेरे ऊपर अकारण कृपा करने वाले गार्ड महोदय भी कहीं खिसक गये थे।

ठीक इसी समय एक ऐसी घटना हुई, जिसने मुझे सच पूछिये तो कतरे से दारेवा कर दिया। मुझसे कुछ दूर पर मेरी ही स्कूल का एक लड़का बैठा हुआ था। वह यकायक खड़ा हो गया और बड़े उत्तेजित स्वर में अपने पास वाले गार्ड से बोला– "मास्टर साहब! मास्टर साहब! यह चौथा सवाल गलत छपा है।" गार्ड ने उसे डाँटकर बैठा दिया। और सभी लोग उसकी इस बात पर अविश्वास की हँसी हँस पड़े। पर मैंने इस मौके पर बड़ी समझदारी से काम लिया। मैं उस लड़के को बखूबी जानता था। गणित के ग्रन्थों को सैकड़ों उदाहरणमालाएँ उत्तरों सहित उसके कण्ठस्थ थीं। ऐसा लड़का विना कारण किसी प्रश्न को गलत नहीं बता सकता। मुझे विश्वास हो गया कि जब वह कहता है, तब प्रश्न अवश्य गलत होगा। बस, मैंने पन्ना उलट दिया और मार्जिन में प्रश्न नं. ४ दर्ज करके उसके सामने लिख दिया– 'इस प्रश्न को गई बार करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यह गलत छपा है; इसलिए इसका उत्तर निकालने की आवश्यकता नहीं है।'

बाद को साबित हुआ कि उस लड़के ने ठीक कहा था। प्रश्न वास्तव में गलत छप गया था। सारी युनीवर्सिटी में दस ही पाँच लड़के इस भेद को जान पाये थे; और उन लड़कों से परीक्षक बहुत प्रसन्न हुआ था। कहना न होगा कि उन्हीं दस-पाँच में मैं भी एक था।

कहाँ एक सवाल भी पहाड़ हो रहा था, कहाँ चुटकी बजाते मैंने तीन कर लिए। छः में तीन, पास होने के लिए काफी थे, इसलिए चिंता जाती रही और उत्साह बढ़ गया। मैंने सोचा कि जब किस्मत ने चर्राना शुरू किया है, तब उसे चर्राने का काफी मौका देना चाहिये। सम्भव है किसी सूरत से, किसी ज्ञानेन्द्रिय द्वारा, किसी ओर से, किसी रूप में, किसी प्रश्न पर किसी समय, कुछ भी प्रकाश पड़ जाय, कोई इशारा मिल जाय, तो कुछ नम्बर और बटोर लूँ!

मैं शेष प्रश्नों को बार-बार पढ़ने लगा। सिर्फ पढ़ना भर हाथ लगता था, पर तब भी मैं बार-बार पढ़ने से बाज न आया। एक प्रश्न दशमलव

ठीक इसी समय एक ऐसी घटना हुई, जिसने मुझे सच पूछिये तो कतरे से दारेवा कर दिया। मुझसे कुछ दूर पर मेरी ही स्कूल का एक लड़का बैठा हुआ था। वह यकायक खड़ा हो गया और बड़े उत्तेजित स्वर में अपने पास वाले गार्ड से बोला– "मास्टर साहब! मास्टर साहब! यह चौथा सवाल गलत छपा है।" गार्ड ने उसे डाँटकर बैठा दिया। और सभी लोग उसकी इस बात पर अविश्वास की हँसी हँस पड़े। पर मैंने इस मौके पर बड़ी समझदारी से काम लिया। मैं उस लड़के को बखूबी जानता था। गणित के ग्रन्थों को सैकड़ों उदाहरणमालाएँ उत्तरों सहित उसके कण्ठस्थ थीं। ऐसा लड़का विना कारण किसी प्रश्न को गलत नहीं बता सकता। मुझे विश्वास हो गया कि जब वह कहता है, तब प्रश्न अवश्य गलत होगा। बस, मैंने पन्ना उलट दिया और मार्जिन में प्रश्न नं. ४ दर्ज करके उसके सामने लिख दिया– 'इस प्रश्न को गई बार करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यह गलत छपा है; इसलिए इसका उत्तर निकालने की आवश्यकता नहीं है।'

बाद को साबित हुआ कि उस लड़के ने ठीक कहा था। प्रश्न वास्तव में गलत छप गया था। सारी युनीवर्सिटी में दस ही पाँच लड़के इस भेद को जान पाये थे; और उन लड़कों से परीक्षक बहुत प्रसन्न हुआ था। कहना न होगा कि उन्हीं दस-पाँच में मैं भी एक था।

कहाँ एक सवाल भी पहाड़ हो रहा था, कहाँ चुटकी बजाते मैंने तीन कर लिए। छः में तीन, पास होने के लिए काफी थे, इसलिए चिंता जाती रही और उत्साह बढ़ गया। मैंने सोचा कि जब किस्मत ने चर्राना शुरू किया है, तब उसे चर्राने का काफी मौका देना चाहिये। सम्भव है किसी सूरत से, किसी ज्ञानेन्द्रिय द्वारा, किसी ओर से, किसी रूप में, किसी प्रश्न पर किसी समय, कुछ भी प्रकाश पड़ जाय, कोई इशारा मिल जाय, तो कुछ नम्बर और बटोर लूँ!

मैं शेष प्रश्नों को बार-बार पढ़ने लगा। सिर्फ पढ़ना भर हाथ लगता था, पर तब भी मैं बार-बार पढ़ने से बाज न आया। एक प्रश्न दशमलव

का था, जिसे मैंने दूर ही प्रणाम करके छोड़ दिया। मेरा विश्वास है कि भगवान् रामचन्द्र ने बजाय दशानन के दशमलव का संहार किया होता तो अगणित स्कूली छात्रों के धन्यवाद-भाजन बने होते। दूसरा प्रश्न ब्याज का था, जिसे मैं तुरन्त समझ गया कि इस जन्म में न कर पाऊँगा। तीसरा सवाल इस प्रकार था—

'एक घड़ी तीन बजे चलाई जाती है और ठीक सात बजे वह बन्द हो जाती है। बताओ कि इतनी देर में घड़ी की दोनों सूइयां एक-दूसरे को किस-किस समय में पार करेंगी ?'

ऐसे सवालों को करने के लिये अंकगणित में एक खास तरीका है, जिसे एक बार सीखने की कोशिश करने पर मुझे सौ बार तौबा करना पड़ा था। और किसी वक्त स्वयं इस प्रश्न की ओर फूटी आँख भी न देखता, पर इस वक्त स्वयं परमात्मा मेरी पीठ पर था और मुझे तदबीरों की फुरहरी सुँघा रहा था। जो प्रश्न मेरे लिये भरतपुर के किले से भी बढ़कर था, उसे मैंने आज यों सर किया।

मेरे जेब में घड़ी थी। उसे मैंने निकाला। उसमें बारह बजे थे। मैंने उसमें तीन बजा दिये और धीरे-धीरे सूई घुमाने लगा और देखने लगा कि दोनो सूईयाँ सात बजने तक कहाँ-कहाँ पर मिलती हैं।

यों मैंने छः में चार सवाल कर लिये। मूँछें तो उस समय थी नहीं, पर जहाँ होनी चाहिये वहां का चमड़ा ऐंठता हुआ मैं उस दिन मकान आया।

दो महीने में परीक्षा का फल प्रकाशित हुआ। दुनिया ने देखा कि मैं पास हूँ। लोग आश्चर्य में डूबे, उतराये और उभचुभ हुए। किसी ने अंधे के हाथ बटेर की कहानी याद की। किसी ने पत्थर पर दूब जमाना स्वीकार किया। कई नास्तिकों ने ईश्वर को मान लिया। मैंने अपनी पीठ ठोंकी और कहा जीते रहो। जैसा मेरा राजपाट लौटा, वैसा ईश्वर करे सबका लौटे।

# मंदिर की नींव

जि. जे. 'हरिजीत'

— पात्र —

मेजर

स्क्वैड्रान लीडर विक्टर

बख्शी

संतसिह

तथा अन्य सेनाधिकारी और तीन चीनी

[ईंटों से बनाया गया एक फ़ौजी-चौकी का कमरा। कमरे के बायीं ओर एक दरवाजा है। सामने की दीवार में बायीं ओर एक खिड़की है जो खुली है और उसमें से आकाश के टिमटिमाते तारे दिखायी दे रहे हैं। खिड़की के दायीं ओर एक खुला दरवाज़ा है। उसमें से अंदर के कमरे का कुछ हिस्सा दिखायी दे रहा है। उस कमरे में मंद प्रकाश है। बाहर के कमरे की दीवार पर कुछ नक्शे और पं. नेहरू तथा डा. राधाकृष्णन् की तस्वीरें हैं।

कमरे के ठीक बीच में एक बड़ा टेबुल है। उसके चारों ओर कुर्सियाँ हैं। टेबुल पर दिया जल रहा है जो टेबुल पर पूर्ण रूप से और कमरे में क्षीण रूप से प्रकाश डाल रहा है। टेबुल पर दो-तीन टेलिफोन भी रखे हैं। कमरे के दायीं ओर कोने में एक कद्दे-आदम रैक है। उसके पास एक स्टूल पर सुराही है।]

[पर्दा उठने के बाद टेबुल के चारों ओर सेनाधिकारी बैठे नजर आते हैं। सामने मेजर टेबुल पर बिछे नक्शे पर पेन्सिल से कुछ दिखाते हुए सेनाधिकारियों को आदेश दे रहा है। सभी सेनाधिकारी नक्शे की ओर ध्यानपूर्वक देख रहे हैं।]

मेजर दुश्मन ने इस चौकी पर तीसरी बार हमला बोल दिया है। शायद अब भी लड़ाई चल रही है। हमारे स्क्वैड्रान लीडर विक्टर वहाँ गये हैं। उनके आने के बाद वहाँ की खबर मिल जायेगी। अब इधर खबर मिली है कि यहाँ भी चीनी हमला करनेवाले हैं। किस क्षण में आयेंगे यह पता नहीं। मगर धोखे से आयेंगे यह निश्चित है। सब तैयार रहिए। चीनी फ़ौज में मंचूरियन ट्रूप्स ज्यादा हैं। और कोरिया के भी....

[इतने में एक जवान बाहर से अंदर आकर सल्यूट करके एक चिट्ठी मेजर के हाथ में देता है।]

मेजर (चिट्ठी पढ़कर) भेज दो! (जवान सल्यूट करके बाहर जाता है।) हमारे स्क्वैड्रान लीडर आये हैं। तीसरी बार भी चीनियों को पीछे हटना पड़ा। अब हमारी चौकी की बारी है। अब आप सब अपने-अपने पोज़िशन्स पर खड़े रहिए।

[सब खड़े हो जाते हैं और सल्यूट करते हैं। मेजर सल्यूट स्वीकार करता है। सब सेनाधिकारी बाहर चले जाते हैं। कुछ क्षणों की निस्तब्धता के बाद मेजर टेबुल की दराज खींचकर उसमें से सिगरेट का डिब्बा निकालता है और उसमें से एक सिगरेट लेकर मुँह में लगाकर सुलगाता है। स्क्वेड्रान लीडर विक्टर अंदर आता है और मेजर के पास आकर सल्यूट करता है। मेजर भी सल्यूट करता है।]

मेजर (अपनी कुर्सी पर बैठता है और दूसरी कुर्सी की ओर इशारा करके) बैठो!

विक्टर (कुर्सी पर बैठता है। मेजर उसकी ओर सिगरेट का डिब्बा बढ़ाता है, मगर विक्टर उसकी ओर हाथ न बढ़ाकर मुस्कुराता है।)

मेजर ओह! मैं भूल गया था। (सिगरेट का डिब्बा अपनी ओर वापस खींच लेता है) कहो, क्या हाल है? तुम्हारा हेलिकाप्टर ठीक तो है न?

विक्टर गोली लगने से कुछ डैमेज हुआ है, मगर वैसे तो चलने में कोई तकलीफ़ नहीं है। कुछ लोगों को लुम्पु के अस्पताल में पहुँचाया। यदि आप इजाज़त दें, तो फिर एक बार वहाँ हो आऊँगा।

मेजर और भी घायल हैं क्या?

विक्टर जी नहीं।... मगर हो सकता है कि चौथी बार भी दुश्मन हमला बोल दे...

मेजर अभी तो खबर नहीं। हाँ, अब तो हमला इस चौकी पर होने वाला है।

विक्टर यहाँ ?

मेजर हाँ, खबर मिली है। हुक्म भी मिला है कि बारूद खत्म होने तक लड़ाई जारी रहे और बाद में पिछली चौकी में लौटें। मगर ...मगर मैं चाहता हूँ कि बारूद खत्म होने तक क्या, मरते दम तक यहीं लड़ें और देखें कि यह लाल चीनी हमारी फ़ौज पर कैसे कब्जा करता है ?... अरे हाँ... (मुस्कुराते हुए) अब कहाँ तक पहुँची है गोली ?

विक्टर (मुस्कुराते हुए) अब तो दिल तक पहुँची है सर !

मेजर लेकिन तुम आपरेशन क्यों नहीं कराते ? लुम्पु का अस्पताल ज्यादा दूर तो है नहीं।

विक्टर मगर सर, मैं नहीं चाहता कि लड़ाई यहाँ जारी रहे, खून बहता रहे, घायल कराहते रहें और मैं अस्पताल के पलंग पर मीठी दवा पीता लेटा रहूँ।

मेजर मगर कहीं ऐसा न हो कि...

विक्टर कुछ नहीं होगा सर ! (मुस्कुराते हुए) मेरा दिल इतना नरम है कि गोली उसकी ओर ताकने की हिम्मत भी नहीं रखती।

मेजर (ऊंचे स्वर में हँसते हुए) ह: ह: ह: ह: !...ठीक है। नरम दिल से गोली भी डरती है। उसे तो संगदिल ही ज्यादा पसंद है और हम गोली को प्यार करने के लिए अपने में संगदिल रखते हैं। लेकिन तुम नरम दिल रखते हो तो मैं कहे देता हूँ– तुम मिलिटरी के लिए बेकार हो।

विक्टर · क्यों सर ?

मेजर सिपाही की पहली सिफ़त है मजबूती, फिर सख्ती, बर्दाश्त और बहादुरी ! इन सिफ़ात से ही कोई सिपाही बनता है। ...खाने

को मिले तो सुअर की तरह खाओ; नहीं मिले तो भूखे रहो, लेकिन मरो नहीं। गन् हाथ में और दुश्मन सामने!—तो सब कुछ भूल जाओ और गोलियाँ बरसाओ। कहीं गोली लगी तो मर जाओ। देश के शहीदों की सूची में तुम्हारा भी नाम लिखा जायेगा। और शहीदों का खून ही तो मंदिरों की नींव है जहाँ उनकी बंदिगी होती है, पूजा होती है।

विक्टर लेकिन सर, दिल को पत्थर बनाये बिना भी यह कर सकते हैं।

मेजर वही तुम्हारी गलती है विक्टर! एक-एक जवान की जिंदगी में झाँककर देखो, पता चलेगा। सूबेदार रामसिंह से पूछो—उसका घर-बार कर्ज़ में डूबा जा रहा है। जिस दिन वह काम आयेगा उसी दिन उसकी घर-गिरस्ती भी तहसनहस हो जायेगी। गुप्त से पूछो-जब वह जायेगा तो उसकी जवान स्त्री का क्या होगा? और थापा, शमशेर सिंह, हुसेन... ! सबकी जिंदगियाँ बेशकीमत हैं। सबके अपने-अपने प्राब्लम्स हैं। मगर आज कैसे तैनात खड़े हैं—दिल को पत्थर बनाके। ...(कुछ क्षण मौन) और मेरी हालत... कुछ दिन पहले लिखी थी... पड़ोस का आदमी मेरी ओर घूर घूरकर देखता है, वहाना करके बातें करने आता है...(हँस कर) पगली है! भला, वह खूबसूरत हो और उसे निहारने कोई न आये, यह कहीं सुनने को मिला है?—और जिसका पति लड़ाई में गया हो . . . ! जानते हो विक्टर, अगर मैं यहाँ से जिंदा न लौटूँ तो क्या होगा?

विक्टर (सर झुकाये) जी . . . !

मेजर शायद तुम सोच नहीं सकते। मैं बताऊँगा, सुनो . . .वह पड़ोसी दुनिया भर की हमदर्दी और तसल्ली के साथ उसके पास जायेगा। और जाता ही रहेगा। और आखिर एक दिन उसे अपना बनाके ही . . . !

विक्टर (वेदना और रोष के साथ खड़े होकर) सर!

मेजर सिपाही को शादी नहीं करनी चाहिए। घर नहीं बसाना चाहिए। वह तो लड़ने के लिए पैदा होता है, समझे।...हसीन लड़कियों को सपने में देखने के लिए नहीं।...

विक्टर (असह्य वेदना से) बस कीजिए सर, मैं नहीं सुन सकता।

मेजर इतने ही में पस्त हो गये?..जानते हो विक्टर, मैं यह सब तुमसे क्यों कह रहा हूँ?...तुम्हारे प्रति मुझ में स्नेह है। और तुम शेरो-शायरी, मज़मूननवीमी करते हो। मैं चाहता हूँ कि तुम सिपाहियों की जिंदगी से परिचित हो जाओ, असलियत और हकीकतों को समझो और अपनी कलम से सिपाही-जीवन का महत्त्व समझाओ। हमारे देश में आज मिलिटरी-जीवन से जानकारी रखनेवाले लेखकों की निहायत कमी है।....

विक्टर लेकिन सर, मैं तो लड़ने आया हूँ।

मेजर (हँसते हुए) मैं जानता हूँ कि तुम लड़ने आये हो। और तुम खूब लड़ो।....हाँ, दस चीनियों से कम नही चलेगा।....जानते हो, मैंने कितने चीनियों को मारा है? ...सत्रह!....

विक्टर सत्रह?

मेजर हाँ, सत्रह! अगर जंगी-कारवाई की दृष्टि से चौकी नहीं बदलनी पड़ती तो तादाद और भी बढ़ती। खैर, सात तो फालतू है। तुम्हें चाहिए तो दे दूँगा। नहीं तो अदद पूरी करने के लिए मुझे और तीन चीनियों को ढूँढना पड़ेगा।...(हँसता है)

[विक्टर भी उसके साथ हँसता है।]

मेजर अच्छा विक्टर, तुम्हारी हसीना की क्या खबर है? सपने में बराबर आती होगी।....(मुस्कुराते हुए दूसरा सिगरेट सुलगाता है।)

विक्टर (झेंपकर) नहीं सर, मैं सोता ही कहाँ ?....और....अब तो सपना देखूँ भी क्यों? इन चीनियों को खदेड़ने के बाद सीधे उसी के सामने खड़ा होकर देखूँगा।

मेजर खड़े होकर देखते ही रहोगे या कुछ बातचीत भी....?

विक्टर (मुस्कुराकर) हाँ-हाँ, बातें करूँगा, खूब करूँगा। शादी उसके साथ जो करनी है।

मेजर (ऊंचे स्वर में हँसकर) वाह! वाह! अभी कह रहे थे कि सपना नहीं देखता। लेकिन मेरे सामने ही सपना देखने लगे और वह भी ऐसा सुहावना सपना।

[दोनों हँसते हैं।]

मेजर हाँ, फर्ज करो कि उसकी दादी माँ को यह शादी मंजूर न हो, तो....

विक्टर लेकिन अब दादी माँ के पास जाने की क्या जरूरत है। अब तो मेरा स्थान कुछ ऊँचा है। सुना है कि रेडियो और अखबारों में मेरे बारे में इशाअत की जा रही है। तो लड़ाई की खबरें सुनने वाले करोड़ों हिन्दुस्तानियों में वह भी एक क्यों न होगी? और उसके दिल में मेरे लिए....

मेजर हाँ-हाँ, क्यों नहीं!...और वह डांस भी जानती है—क्लैसिकल डांस! हो सकता है, हमारी फ़ौज के लिए डांस करके रुपये-गहने इकट्टे किये हों। और हो सकता है, तुम्हारे लिए नया स्वेटर बुन रही हो। ...और विक्टर, जब तुम लौटोगे तो...

विक्टर (बीच में ही) सर, आप बार-बार मेरे लौटने की बात क्यों छेड़ते हैं?

मेजर (मुस्कुराते हुए) इसलिए कि तुम विजयी होकर लौटो और...

विक्टर लेकिन सर, मेरे विजयी होने का मतलब है देश की विजय होना, चाहे मुझे यहीं मरना पड़े–इसी मिट्टी में, इसी बर्फ में, इसी आकाश में !

मेजर (गर्व से) शबाश, मेरे शेर ! मुझे तुम से यही उम्मीद थी। मैं चाहता हूँ कि सब सिपाही इसी तरह मजबूत हों और तब देखें इस लाल चीनी को अपने असली रंग का पता कैसे चलेगा !... (मूँछों पर ताव देते हुए) ल्हासा से भी भागना न पड़े तो...

[एक जवान हाथ में चिट्ठी लिये तेज़ी से अंदर आता है और सल्यूट करके मेजर के हाथ में देता है। मेजर चिट्ठी पढ़कर खड़ा होता है और विक्टर भी खड़ा होता है।]

मेजर तुम्हें अभी जाना होगा, विक्टर ! उस चौकी में शायद लड़ाई हो रही है। वहाँ से कांटाक्ट नहीं मिल रहा है। कोई घायल हो तो वहाँ से ले जाना। गुड् लक् !

विक्टर थेंक्यू सर ! (सल्यूट करके तेज़ी से बाहर चला जाता है।)

मेजर संतसिंह, जरा बख्शी को भेजो !

[जवान सल्यूट करके चला जाता है।]

[मेजर डिब्बे से सिगरेट निकालकर मुँह में लगाकर सुलगाता है। दूर से समवेत स्वरों में कुछ गुनगुनाने की आवाज़ पास आती है। मेजर कुतूहल से खिड़की के पास जाकर देखता है। बख्शी अंदर आकर सल्यूट करता है। समवेत स्वर और भी पास आता है और स्पष्ट सुनाई पड़ता है :

.........बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।.........]

मेजर इस वक्त ये लोग कहाँ से आ रहे हैं, बख्शी ?

बख्शी मालूम नहीं सर। शायद मोम्पा लोग होंगे। सुना है कि वे सब बौद्ध हैं और हमारी खैरअंदेशी के लिए प्रार्थना भी कर रहे हैं।

मेजर (टेबुल के पास आकर, मुस्कुराते हुए) यही तो हम नहीं चाहते। मैं चाहता हूँ कि यहाँ हथियार और लड़ाई के सिवा कुछ न हो। लड़ाई और लड़ाकू से धर्म को दूर रहना चाहिए। और...

[ इतने में ही बाहर से आवाज़–' अरे ये तो दुश्मन हैं! होशियार .......!' उसकी बात समाप्त होने के पहले ही गोलियां चलाने की आवाज़ शुरू हो जाती है। मेजर और बख्शी चौंककर बंदूकें हाथों में लेते हैं। बख्शी कमरे का दिया बुझाता है। एक जवान तेज़ी से अंदर आकर सल्यूट करके– ]

जवान सर, दुश्मन बौद्धों के भेष में आया था। सूबेदार ने पहले ही देखा और हमको होशियार किया और खुद घायल हो गया।....

मेजर अच्छा चलो।

[ बख्शी और जवान, दोनों मेजर के पीछे बाहर जाते हैं। गोलियाँ चलाने की आवाज़ बढ़ती ही जाती है। कुछ क्षणों के बाद कमरे की खिड़की में एक टार्च दिखायी पड़ता है और वह धीरे-धीरे खिड़की के पास आता है। कमरे के अंदर भी रोशनी पड़ती है। कोई चेहरा खिड़की में से झाँकता हुआ दिखायी पड़ता है। फिर टार्च बुझ जाता है। और तीन व्यक्ति दरवाज़े से कमरे के अंदर प्रवेश करते हैं। एक व्यक्ति टार्च जलाकर रोशनी से कमरे को टटोलता है। टार्च की और अंदर के कमरे की रोशनी में तीनों व्यक्तियों की आकृतियों का आभास मिलता है। उनके हाथों में मशीनगन् हैं और वेश-भूषा बौद्धों की है। टार्च वाला चीनी धीरे-धीरे अंदर के कमरे में चला जाता है। इधर एक चीनी

कोने का रैंक खोलकर कुछ टटोलने लगता है और दूसरा टेबुल पर रखे टेलिफोन का चोंगा उठाकर कान से लगाता है। फिर नीचे रखकर, टेबुल पर बिछे नक्शे को लपेटने लगता है। बाहर गोलियाँ चलाने की आवाज़ ज़रा घटती है। अब दोनों चीनी दरवाज़े की ओर पीठ किये टांड में ढूँढने लगते है। इतने में बाहर से बख्शी की आवाज़ आती है।]

बख्शी सर! दुश्मन.... अंदर!....

[आवाज़ सुनते ही दोनों चीनी अपने हथियार सँभालने की कोशिश करते हैं। लेकिन बाहर से गोलियों की बौछार होकर दोनों वहीं ढेर हो जाते हैं। दरवाज़े में पहले बंदूक की नाली दिखायी पड़ती है। फिर उसे हाथ में थामे हुए मेजर का प्रवेश, उसके पीछे बख्शी भी आता है। मेजर खिड़की के पास ही खड़ा होता है। उसके कंधे में गोली लगने के कारण खून बह रहा है। बख्शी तुरंत चीनियों की लाशों के पास दौड़ता है और झुककर उन्हें देखने जाता है। मेजर और आगे बढ़कर उसकी ओर देखता है।]

मेजर है कोई जिंदा?

बख्शी शायद नहीं सर! (लाशों पर झुकता है।)

[इतने में तीसरा चीनी अंदर के कमरे से बख्शी और मेजर की तरफ गोलियाँ बरसाते हुए दरवाज़े की तरफ भागता है। मेजर भी गोलियाँ बरसाता है। चीनी जख्मी होकर दरवाज़े के बाहर गिर पड़ता है। केवल उसकी टाँगें दरवाजे पर दिखायी पड़ती हैं। अब मेजर के सीने में भी गोली लगी है और वहाँ से भी खून बह रहा है। मेजर लड़खड़ाते हुए बंदूक को आगे करके अंदर के कमरे में झाँककर देखता है और वहाँ किसी को न पाकर बख्शी के पास आता है।]

मेजर (उसे हिलाते हुए) बख्शी... ! बख्शी... !

[ बख्शी का शरीर लुढ़क पड़ता है। एक बार लंबी साँस लेकर फिर चीनियों के कपड़े टटोलता है। कुछ कागज़-पत्न हाथ लगते हैं। उन्हें लेकर टेबुल के पास आता है और उन्हें टेबुल पर रखकर कमरे का दिया जलाकर एक कुर्सी पर बैठ जाता है। सीने के दर्द से कराह उठता है। और हाथ से घाव को दबाता है। हाथ भी लाल हो जाता है। उसे पोंछते हुए चीनियों के कागज़ पत्नों की ओर नज़र दौड़ाता है और उन्हें पढता है। फिर 'ओह' कहकर सीने पर हाथ रखकर पीछे की ओर टेकता है। बाहर गोलियाँ चलने की आवाज़ कम होती है। कुछ क्षणों के पश्चात् विक्टर का प्रवेश। मेजर के पास आकर सल्यूट करता है। मेजर उसकी ओर देखकर मुस्कुराता है। लेकिन दर्द से मुस्कुराहट एकाएक गायब हो जाती है और कराह उठता है। ]

विक्टर (घबराकर उसके पास आकर) सर! आपको गोली लगी! ...हैं, सीने में... !

मेजर हाँ, सीने में। दिल के पास! मगर दिल में घुस जायेगी। संगदिल जो है।

विक्टर (दरवाज़े को ओर मुड़कर) जमादार। जमादार!....

मेजर नहीं विक्टर, नहीं! किसी को तकलीफ न दो। सब तैनात वहीं खड़े रहें। ...हाँ वहाँ की क्या खबर है?

विक्टर अच्छी खबर नहीं है सर! (सर झुका लेता है) उस चौकी पर दुश्मनों ने कब्ज़ा कर लिया है और मेरा हेलिकाप्टर वहाँ उतर ही न सका। हमारे जवान पीछे की झील पार करके दूर चले जा रहे थे। (कोने की ओर जाकर टाँड की दराज़ खींचकर

वहाँ से प्रथमोपचार की चीजें लेकर मेजर की मरहमपट्टी करने लगता है। ) उन सबके उस पार चले जाने तक एक अकेले जवान ने चीनियों को रोक रक्खा था। उसे बचाने की मैंने बहुत कोशिश की। लेकिन कामयाब न रहा। ...और मुझे लौट आना पड़ा। मगर इधर तो....

मेजर तुम्हें एक काम सौंपता हूँ विक्टर ! ...अब कुछ ही देर में चीनियों की फ़ौज बड़ी तादाद में आयेगी। शायद हमें भी चौकी खाली करनी पड़ेगी। ऊपर से हुक्म है कि बारूद खत्म होते ही चौकी खाली करें। मगर मैं चाहता हूँ कि सब जवान मरते दम तक लड़ते रहें। घायल होकर, लँगड़ा होकर पेंशन पाने के बदले लड़ते-लड़ते मर जाना ही सिपाही के लिए मुनासिब है।...लेकिन ...लेकिन....हम इस तरह चौकियाँ खाली क्यों कर रहे हैं?.... क्यों कर रहे हैं?...यह कैसी मजबूरी है! आखिर ऐसा क्यों हुआ?...ओह !

[ बाहर गोलियाँ, मोर्टार आदि चलाने की आवाज़ शुरू होती है।]

मेजर शायद आ गये ! ...एक के बाद एक हमला करते रहेंगे ताकि हम सुस्ता न लें। यही इन चीनियों की स्ट्रेटेजी है।...हाँ, विक्टर ! यहाँ की कोई चीज़ दुश्मन के हाथ नहीं लगनी चाहिए। तुम सब जला दो और जल्दी पिछली चौकी को इसकी खबर दे दो।

विक्टर मगर सर ! आप... ?

मेजर मेरी चिंता मत करो। चौकी की चिंता करो। जवानों की चिंता करो। देश की चिंता करो।

विक्टर हाँ सर ! आपको हेलिकाप्टर में....

मेजर हेलिकाप्टर लाशों को लादने के लिए नहीं है विक्टर ! तुम घायल जवानों को ले जाओ। मैं तो इसी मिट्टी में, इसी बर्फ में मरना चाहता हूँ। ...आह...!

विक्टर सर ! (पास आता है और सीने के घाव पर हाथ रखता है) मैं अभी आपको लुम्पु के अस्पताल में पहुँचाऊँगा। आप वहाँ ठीक हो जायेंगे।

मेजर (मुस्कुराने की चेष्टा करते हुए) अधिक आशावादी होना अच्छा नहीं विक्टर !....

विक्टर सर... ?

मेजर मैं चाहता हूँ कि तुम खूब लड़ो, विजयी हो और अच्छी तरक्की पाओ ! सुखी रहो ! और उस हसीना के साथ तुम्हारी शादी हो ! और...और..(ध्वनि गद्‌गद् हो जाती है)..और हो सके तो एक...एक मेरा काम करो।...

विक्टर (दु:ख और कुतूहल से उसकी ओर देखता है।)

मेजर हाँ, हो सके तो। हो सके तो......

विक्टर कहिए सर !

मेजर हो सके तो एक बार मेरे घर जाना। उसे पड़ोसी से.... (ध्वनि गद्‌गद् हो जाती है।)

विक्टर (आर्द्र होकर) सर ! यह मेरा पहला कर्तव्य होगा।

मेजर विक्टर, तुम हनिमून के लिए यहीं आना !...और मुझे खुशी है कि मैं अपनी ही मिट्टी पर मर रहा हूँ। इन चीनियों की तरह परदेश में नहीं मर रहा हूँ।...विक्टर !....

विक्टर सर... ?

मेजर अगली पीढ़ी को यह मालूम हो कि उनके कल के लिए हमने अपने आज की किस तरह कुर्बानी दी।...(लंबी साँस लेकर) एक सिगरेट दो विक्टर।

[विक्टर एक सिगरेट उसके मुँह में रखता है और टेबुल से लाईटर लेकर जलाकर सिगरेट के पास ले जाता है। लेकिन आग बुझ जाती है और मेजर के मुँह से सिगरेट नीचे गिर जाता है। उसकी आँखें मुँद गयी हैं।]

विक्टर (आर्द्र कंठ से) सर!...सर!....(अपनी टोपी हाथ में लेकर कुछ क्षणों के लिए सर झुकाकर शांत खड़ा रहता है।)

[बाहर गोलियाँ चलने की आवाज़ तेज़ होती है। विक्टर पहले बख्शी की लाश को बाहर ले जाता है और मेजर की लाश को भी बाहर ले जाता है। फिर अंदर आकर सब कागज़ पत्रों को अपने नैपसैक में भरकर अंदर के कमरे में चला जाता है। वहाँ से लौटकर पं. नेहरू और डा. राधाकृष्णन् की तस्वीरें लेकर तेजी से बाहर चला जाता है। अंदर के कमरे में कुछ धधकती-सी चीज़ नज़र आती है।]

# टिप्पणियाँ

### १. मैथिलीशरण गुप्त

"भारत भारती" के प्रकाशन से गुप्तजी लोकप्रिय कवि बन गये। यहाँ तक कि कई लोगों ने सारी "भारत-भारती" को कंठस्थ कर दिया था। एक आश्रम में तो रोज गीता की तरह उसका पाठ होता था। गुप्तजी महात्मा गाँधीजी के प्रिय कवियों में एक थे। कुछ समय तक राज्यसभा के मनोनीत सदस्य भी थे।

इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ—साकेत, यशोधरा, पंचवटी, जयद्रथवध, सिद्धराज, शकुन्तला, मेघनाद वध आदि।

गुप्तजी आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी के बड़े प्रिय शिष्य थे। इन्होंने 'आचार्यदेव' शीर्षक इस संस्मरण में यह प्रकट किया है कि किस प्रकार द्विवेदीजी ने उन्हें कवि बनाया। इस संस्मरण का ऐतिहासिक महत्त्व है।

● ● ●

दुर्मुख—घोड़ा; साकेतवासी—स्वर्गवासी; जुहारना—अभिवादन करना; डौल—उपाय; चिक—बांस की तीलियों का बना हुआ झीना पर्दा जिसे खिड़की-दरवाजों पर डालते हैं; गोट—कपड़े की दुहरी पट्टी जो सुन्दरता के लिए कपड़ों के किनारे लगाते हैं; पटली—तख्ता; उसारा—बरामदा;

पक्खा—कमरे की चौडाई की दीवार का वह तिकोना ऊपरी भाग जिस पर बड़ेर रखते हैं, पाखवाली दीवार; मझपौरिया— मकान का वह कोठरी या गली की तरह का भीतरी भाग जो प्रवेश करते ही पड़ता है, ड्योढ़ी; गमछा—अँगौछा; ससम्भ्रम—सादर; फलालैन—एक तरह का मुलायम ऊनी कपड़ा (अंग्रेजी-फ्लैनेल); कूकना—कमानी कसने के लिए घड़ी आदि में कुंजी लगाना; पक्का गाना—शास्त्रीय संगीत; बण्डा कोट—फतुही, वेस्टकोट; गिड्डी-गड्डी; शेख सादी—फारसी का यशस्वी कवि और गुलिस्ताँ-कोस्ताँ आदि का रचयिता; मायरी माय......गड़तु है—मैया री मैया, मार्ग पर चला नहीं जाता, गली सांकरी है पाँवों में छोटे छोटे कंकड़ चुभते हैं; प्रभविष्णु—प्रभावशाली; पं. नाथूराम शंकर शर्मा—इनका जन्म संवत् १९१६ में और मृत्यु संवत् १९८६ में हुई। वे अपना उपनाम 'शंकर' रखते थे और पद्य रचना में अत्यंत सिद्धहस्त थे। पं. प्रतापनारायण मिश्र के वे साथियों में थे। समस्यापूर्ति वे बड़ी ही सटीक और सुन्दर करते थे जिससे उनका चारों ओर पदक, पगड़ी, दुशाले आदि से सत्कार होता था। 'गर्भरंडा रहस्य' नामक एक बड़ा प्रबन्ध काव्य उन्होंने विधवाओं की बुरी परिस्थिति और देवमंदिरों के अनाचार आदि दिखाने के उद्देश्य से लिखा था। फबतियाँ और फटकार इनकी कविताओं की एक विशेषता है।(—शुक्ल); तुकबंदी—तुक मिलाने क्रिया, साधारण पद्य रचना; परितोष—किसी इच्छा की पूर्ति से होनेवाली प्रसन्नता।

## २. जयसिंह

श्री जयसिंह आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके हैं। चार सौ से अधिक कहानियाँ लिखी हैं। मध्य प्रदेश सरकार ने इन्हें अनेक बार पुरस्कृत किया है। इनकी कहानियाँ भारत की सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। कभी-कभार रेडियो नाटक भी प्रसारित होते रहते हैं। अनेक वर्षों से इन्दौर में 'नई दुनिया' के उपसंपादक हैं। 'कलावे' इनका प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास है। 'सात स्वर एक आवाज़' इनकी पुरस्कृत कहानी संग्रह है।

'लंबी दौड़' इनकी सुन्दर तथा सरस कहानी है। भोले-भाले ग्रामीणों का शोषण और शोषक के प्रति 'भोला-भाला-बदला' इस कहानी की विशेषता है।

* * *

बीहड़—ऊबड़-खाबड़; जुगाली—गाय-बैल आदि का निगले हुए चारे को थोडा-थोड़ा पेट से मुँह में लाकर चबाना; गूदड़ा—रंग-बिरंगे टुकड़ों को सीकर वनाया हुआ ओढ़ना; गदीला—गद्दा, झींकना—कुढ़ना, पिसना; गदराना—पकने पर होना; अफराना—जी भर खाना, अघाना; लूगड़ी—ओढ़नी; बंगड़ी-गोटा; पेचीदा-कठिन, उलझनवाला; इजलास—हाकिम या अधिकारी का (विचार के लिए) बैठने का स्थान, न्यायालय; पेशी—मुकद्मे की सुनवाई; ऊब—ऊभ; लुगाइयाँ—स्त्रियाँ; मूसल-लकड़ी का मोटा डंडा जिससे धान कूटते हैं; घड़ना—गढ़ना; शेरे बब्बर—सिंह; टापरे—झोंपड़ी; तूंबा—कटुतुंबी, कड़वे कद्दू को खोखला कर बनाया हुआ पात्र; निस्तार-छुटकारा; फिरकल—मूर्ख; मेड़—खेत की हदबंदी; टखना—एड़ी के ऊपर की हड्डी की गांठ; कदावर—बड़े डील डौल का; मरदूद—निकम्मा, बहिष्कृत; हलक-कंठ; पावण्डा—कदम; मुर्दाल—मुर्दनी।

### ३. डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी

आधुनिक हिन्दी साहित्य के गंभीर अन्वेषक और मौलिक चिंतक डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी शांतिनिकेतन के विश्वभारती विश्वविद्यालय में हिन्दी विभागाध्यक्ष रहे और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरजी के मन में हिन्दी के प्रति प्रेम जगाया जिसके फलस्वरूप गुरुदेवने कबीर के सौ पदों का अनुवाद किया। फिर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा पंजाब विश्वविद्यालय में भी हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य किया। साहित्य के मर्मज्ञ एवं अच्छे पारखी हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं—कबीर, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य आदि। प्रसिद्ध उपन्यास हैं—बाणभट्ट की आत्मकथा, चारु चन्द्रलेख, पुनर्नवा आदि। निबन्ध संग्रह हैं—अशोक के फूल, कल्पलता, विचार और वितर्क।

'जबकि दिमाग खाली है' में द्विवेदीजी की व्यक्तिगत छाप तथा मौलिक चिंतन है। 'हिन्दू' कहलाने वाले लोगों की प्राचीन एवं अर्वाचीन दु:स्थितियों का गंभीर विश्लेषण है।

* * *

पाणिनी–एक विख्यात मुनि जिन्होंने अष्टाध्यायी नाम का प्रसिद्ध सूत्रबद्ध व्याकरण-ग्रंथ बनाया (इनका समय इसवी पूर्व चतुर्थ शतक माना जाता है और कह जाता है कि शंकर के प्रसाद से इन्हें व्याकरण का अगाध ज्ञान प्राप्त हुआ था।); यास्क–निरुक्त के प्रणेता यास्क मुनि; अपोहवाद—युक्ति द्वारा शंका निवारण; वक्षु–अक्सस नदी, महाक्षोण–एक नदी का नाम दरख्त–पेड़; रक्ताशोक–लाल अशोक; कर्णिकार–कनियार का फूल; सिप्रा–उज्जैन के पास की नदी क्षिप्रा; सद्योदृष्ट–अभी अभी देखा हुआ; किन्नर–देवताओं की एक योनि जिनका मुँह घोड़े के जैसा होना माना जाता है; अनङ्ग लेख–प्रेम पत्र; अलका–कुबेरपुरी; विक्रमादित्य–उज्जयिनी का एक प्रतापी राजा (यह विक्रम नामक संवत का प्रवर्तक माना जाता है और कहा जाता है कि इसने शकों को पराजित कर भगाया था और सारा उत्तर भारत इसके शासन में था); अवन्ती–मालव जनपद, आधुनिक उज्जैन; कुभा–काबूल नदी; कालागुरु–एक तरह का काला अगरु; मंजरी–कोंपल।

### ४. गोपालप्रसाद व्यास

हास्य रस के क्षेत्र में श्री गोपालप्रसाद व्यासजी का ऊंचा स्थान है। अनेक वर्षों से नई दिल्ली के दैनिक हिन्दुस्तान के उपसंपादक हैं। उसका लोकप्रिय स्तंभ 'यत्र तत्र सर्वत्र' के लेखक आप ही हैं। आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं–अनारी नर, हलो-हलो, तो क्या होता? इनके अतिरिक्त निबन्ध, जीवनी, कविता आदि भी लिखे हैं।

'मेहमान से भगवान बचाये'–शीर्षक से ही पता चलता है कि आजकल मेहमान, जो भगवान का रूप न रहा, से किस तरह परेशानी उठानी पड़ती है और उससे कैसे छुटकारा मिलता है। हास्य रस का उत्कृष्ट नमूना है।

दर-किनार–अलग; गुर–कार्य साधने की युक्ति; गोया–मानों; पेशबंदी-बचाव की युक्ति; रौब-दबदबा; औसतन–साधारणत:; मनहूस-बुरा; बजरी–छोटे छोटे कंकड़; कुटकी–एक पहाड़ी पौधा जिसकी जड़ें दवा के रूप में काम आती हैं। हिरन होना–भाग जाना, मुआयना फर्माना–निरीक्षण करना; छठी का दूध याद आना–बहुत हैरानी होना; बा-कार–मोटर कार वाले; बिदकना–भड़कना; नुस्खा–डाक्टर या वैद्य के द्वारा रोगविशेष के लिए निकाली गयी औषध; बारे-न्यारे होना–निपटाना।

## ५. इब्राहीम शरीफ

श्री इब्राहीम शरीफ़ का जन्म आंध्र प्रदेश के कड़पा जिले के एक गाँव में हुआ था। अल्पायु में ही इन्होंने हिन्दी कथा साहित्य में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया और समांतर कहानियों के अग्रदूत बन गये। हिन्दी के बड़े से बड़े दिग्गजों ने श्री शरीफ़ की भूरी भूरी प्रशंसा की है। १९७९ में इनका देहांत हुआ और इसके साथ ही कथाकाश के एक चमकते सितारे का अंत हुआ। मध्यम वर्ग के मुस्लिम परिवार का सहज चित्रण इनकी रचनाओं में मिलता हैं। इनकी रचनाएँ हैं–कई सूरजों के बीच (कहानी संग्रह), अँधेरे के साथ (उपन्यास)।

'दिग्भ्रमित' में आज के शहरी जीवन में, राजकीय जीवन में फँसकर भटकनेवाले आदमी का करुण चित्र है।

* * *

पुर्जा–कागज़ का टुकडा; मलाल आना–किसी की ओर से चित्त का खिन्न हो जाना; जुगत–युक्ति, उपाय; ललक–गहरी लालसा; लिबास–पोशाक; बमुश्किल–मुश्किल से; नावाकिफ–अपरिचित; कारगर–असर करनेवाला; हौले-हौले–धीरे-धीरे; माहौल–वातावरण; बूते–शक्ति, सामर्थ्य; धौल–सिर, कंधे या पीठ पर किया जानेवाला घूँसे की तरह का भारी आधात; अजगर–अजदहा; साजिश–अविहित या अपराध रूप कार्य

में गुप्त सहयोग, पोला—खोखला; लावा—ज्वालामुखी पर्वत से निकलनेवाला द्रव पदार्थ; जाहिल—अज्ञ, मूर्ख।

## ६. हरिशंकर परसाई

हिन्दी के व्यंग्य लेखकों में अग्रणी श्री हरिशंकर परसाई १९४६ से लिखना आरंभ किया और तब से बराबर लिखते रहे हैं। इनका व्यंग्य आधुनिक जीवन, राजनीति, साहित्य आदि सभी विषयों पर तीखा प्रहार करता है। भारत की सभी प्रमुख पत्रिकाओं में इनके व्यंग्य लेख प्रकाशित होते हैं। इनकी कृतियाँ—तट की खोज, तबकी बात और थी, ज्वाला और जल, रानी नागफनी की कहानी, उनके दिन फिरे, अपनी अपनी बीमारी आदि प्रसिद्ध हैं।

'बरात की वापसी' में बरात से लौटकर आनेवालों की बस-यात्रा की फजीहत का हास्य-रस-सिक्त वर्णन है।

* * *

बचकानी—बच्चों के लायक; सिगड़ी—मिट्टी का चूल्हा; कौर—निवाला; नेगा—विवाहादि मांगलिक अवसरों पर सगे संबंधियों तथा पौनियों को खुश करने के लिए द्रव्य-वस्त्र आदि देने की रस्म; पन्ना—मध्य प्रदेश के एक शहर का नाम। इत्तफाक—संयोग; बियाबान—जंगल, ऊजड़खंड; पुलिया—पुल; मढ़िया—मंदिर; छागल—चमड़े की छोटी मशक; सतना—मध्य प्रदेश के एक शहर का नाम; बेतकल्लुफी—निस्संकोच; ठर्रा—एक तरह की देशी शराब; लेवादेई—लेन-देन; शेरवानी—एक तरह का आधुनिक ढंग का अँगरखा। तौहीन—अपमान।

## ७. डा. प्रभाकर माचवे

दर्शन शास्त्र और अंग्रेजी साहित्य में एम. ए. करके डा. माचवे ने हिन्दी में पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। उज्जैन में प्राध्यापक रहे, फिर आकाशवाणी में काम किया। साहित्य अकादमी में उपमंत्री बने रहे। अमेरिका में अध्यापन कार्य किया। आजकल शिमला में हैं। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ

हैं—संगीत की साया, खरगोश के सींग, परन्तु, व्यक्ति और वाङ्मय, एक तारा, गली के मोड़ पर आदि।

'जेब' शीर्षक ललित निबंध में जेब से संबंधित विविध विचार लहरियों का समावेश है।

* * *

रोम्युलस-रेमस—मार्स और इलिया के जुड़वाँ पुत्र। इनको टायबर नदी में फेंका गया था। वहाँ एक भेडियाइन ने अपने दूध से इनका पोषण किया था बाद में एक गड़रिये की स्त्री ने इनका पालन पोषण किया। बड़े होने पर; इन्होंने रोम नगर की स्थापना की। पटिया-काठ की तख्ती; बाकायदा—नियमानुसार; सलून—नाई की दूकान; निरा—केवल; गये गुजरे—हीन दशा को प्राप्त; लत—बुरी आदत; अजीबो-गरीब—अनोखा; कटिबंध सरदी-गरमी की कमी-बेशी के विचार से किये गये पृथ्वी के विषवत् रेखा के समानांतर पाँच विभागों में से एक; जुगाली—पागुर, रोमंथ।

**८. पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'**

'उग्र' जी ने अधूरी शिक्षा पायी और वे रामलीला मंडली में अभिनय करते रहे। राष्ट्रीय आंदोलन में जेल गये। अनेक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। 'हिन्दी पंच' नामक हिन्दी की प्रथम कार्टून पत्रिका निकाली। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, हास्य-व्यंग्य, पत्रकारिता आदि विभिन्न प्रकार की कृतियों से साहित्य का भण्डार भर दिया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी ने कहा था—

"धूल और अबीर दोनों 'उग्र' जी के हाथ,
देखना है; आज किसका भाग्य किसके साथ।"

'और तब महाराजकुमार को नींद आई' कहानी में यह बताया गया है कि सुख-चैन धन-दौलत से नहीं, बल्कि गरीबी में, निश्चितता में प्राप्त होता है।

बारहमासी–बारहों महीने फलने-फूलनेवाला, सदा बहार; ठेंगा–अंगूठा, डंडा; कोलिया–तंग रास्ता; एकतारा–एक तरह का तँबूरा जिसमें एक ही तार होता है; कोढ़ी–कुष्ट रोग से ग्रस्त; सोटा–लाठी, डंडा; जाँनिसार–समय पड़ने पर जान की बाजी लगा देनेवाला; छितराना–फैलना, अलग-अलग करना।

## ६. श्रीराम शर्मा

हिन्दी के शिकारी साहित्य के एकमात्र लेखक श्री श्रीराम शर्मा ने अपने अनुभवों को लिखकर शिकार साहित्य को लोकप्रिय बनाया। कलकत्ता के 'विशाल भारत' मासिक के संपादक भी रहे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं–शिकार, बोलती प्रतिमा, प्राणों का सौदा, हमारी गायें, अश्रुमाल, १९४२ के संस्मरण आदि।

लेखक का कहना है "शिकार का मेरा उद्देश्य तो प्रकृति-दर्शन और जीवन के तत्व को समझना होता है। ....गोली चलायी और शिकार का खात्मा कर दिया–शिकार का यह अंश तो निकृष्ट है–कम से कम उनके लिए जो निरामिष हैं। ....शिकार का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए प्रकृति की पोथी का पाठ और उस पाठ को व्यवहार में लाने की चेष्टा।" 'श्मशान के सींग' में यही भाव व्यक्त है।

तुन्द–तोंद; मेद–चर्बी; अलाव–तापने के लिए जलाया हुआ आग का ढेर; गज़ी-गाढ़ा–मोटा, सस्ता कपड़ा; अंगोछा–तौलिया, गमछा; पिछौरा–दुपट्टा; भद्द–बुरा, बेढंगा; बहेलिया–चिड़ीमार; अँधे के हाथ बटेर लग जाना–संयोग; तारकोल–अलकतरा (Coal-tar); पुट्ठा–(चौपायों के) चूतड़ के ऊपर का मांसल भाग; रिझाना–अपने ऊपर किसी को प्रसन्न या तुष्ट करना, मोहित करना; ऋष्यमूक–पंपासर के पास का एक पर्वत जिस पर सुग्रीव रहते थे और जहाँ शाप के कारण बाली न आ सकता था; दुलकी–

कुछ-कुछ उछलते हुए मध्य गति से दौड़ने की एक चाल; तिक्का बोटी–गोश्त की लंबी और पतली बोटी, गोश्त का लोथड़ा।

## १०. श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

बिहार के साहित्य-योगी श्री बेनीपुरीजी असहयोग आंदोलन में भाग लेने के लिए स्कूल छोड़कर राष्ट्र सेवा और साहित्य साधन में जुट गये। इनकी भाषा में चुस्ती और कसावट है। उर्दू तथा देशज शब्दों के प्रयोग से भाषा सजीव हो उठी है। 'गेहूँ और गुलाब' सुन्दर संस्मरणों का संग्रह है। 'माटी की मूरतें' इनके सर्वश्रेष्ठ शब्दचित्रों का संग्रह है और साहित्य अकादमी द्वारा इसका सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है। ये 'नई धारा', 'हिमालय', 'योगी', 'बालक' आदि पत्रिकाओं के संपादक थे। बिहार विधान परिषद के सदस्य भी थे। इनके बारे में माखनलाल चतुर्वेदी ने कहा था–"श्री बेनीपुरी की लेखनी फौलाद उगलती है; हिलकर मनोजगत में भूकम्प करती है।"

'रूपा की आजी' में श्री बेनीपुरी ने एक ऐसी बदकिस्मत औरत का शब्दचित्र प्रस्तुत किया है जो लोकापवाद की शिकार हुई और जिसके साथ घटनाओं ने साजिश की और लोगों ने जल्लाद का काम किया!

आजी–दादी; पलथी-दाहिने और बायें पैरों के पंजों को क्रम से बायीं और दाहिनी जाँघों के नीचे दबाकर बैठने का एक आसन; चिउरा–हरे या भिगोये हुए धान को भून और कूटकर चिपटा किया हुआ एक खाद्य पदार्थ; डायन–चुड़ैल, जादू करनेवाली स्त्री; नजरे इनायत-कृपा दृष्टि; बगाबग-जामा, एक पुराना लंबा पहनावा; अखड़िया–पहलवान, दंगली; खोंचा–चुभन; नाज–गर्व; मुछउठान–आँस, मूछों का आरंभिक रूप; नजात-मुक्ति; पतोहू-पुत्रवधू; ओझा–झाड़-फूंक करनेवाला; कोंछा–आंचल का कोना; सर करना–जीतना; अड़हुल–लाल रंग का एक फूल जो देवी

को चढ़ाया जाता है, जपाकुसुम; झाँझ—काँसे के दो तश्तरी जैसे टुकड़ों से बना मँजीरे जैसा बाजा; फफोले—छाले; घाघ-जादूगर (नी); कारू-कमच्छा—कामरूप की कामाख्या; तुहमत—झूठी बदनामी; ऐंडियाना —ऐंठ दिखलाना, इतराना; सूखा रोग—निमोनिया, बच्चों की एक प्रकार की बीमारी, सुखंडी; चुहल—विनोद; दुसाध—शूद्र में एक जाती जो सूअर पालती है, डोम, भंगी; हुनरमंद—निपुण, कुशल; पट्ठा-जवान; दरियाफ्त—पता लगाना; बाभनी— ब्राह्मणी; खंजड़ी—डफली के ढंग का आकार में उससे छोटा एक बाजा; झुनझुना—काठ, टिन आदि का बना खिलौना जो हिलाने से 'झुन-झुन' बजता है; लच्छा-डोरे का गुच्छा, गोट—कपड़े की दुहरीपट्टी जो सुन्दरता के लिए कपड़ों के किनारे लगाते हैं; गौगा—कोहराम; मँड़ैया—झोंपड़ी। रवि बाबू की कहानी– 'Living or dead'.

## ११. अन्नपूर्णानन्द वर्मा

हिन्दी के हास्य-रस-साहित्य में श्री अन्नपूर्णानन्द वर्माजी का विशिष्ट स्थान है। शुक्लजी के शब्दों में 'अन्नपूर्णानंदजी का हास सुरुचिपूर्ण है।' आपके लिखे हुए 'महाकवि चच्चा' 'मेरी हजामत' आदि हास्य ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। इनकी कहानी 'अकबरी लोटा' हास्य रस का उत्कृष्ट नमूना है। श्री गुलाबराय के शब्दों में "आपके हास्य में जीवन की फाल्तू उमंग के साथ कुछ उद्देश्य भी व्यंजित रहता है।"

करीब ४० साल पहले प्रकाशित "कल की बात" शीर्षक ग्रंथ में संग्रहीत तेरह प्रसिद्ध लेखकों के बीते हुए जीवन पर एक नज़र है। यह निबंध उसी से लिया गया है।

* * *

त्रिकुटी—दोनों भौंहों के बीच कुछ ऊपर का स्थान; गोजर—कनखजूरा; गंडमाला—गलगंड; मन मुकुर—मन रूपी दर्पण; मौज-लहर; मार्के की—महत्त्वपूर्ण; बखूबी-अच्छी तरह; दशमलव—दशांश, चर्राना—दैव खुलना;

फुरहरी सुंघाना–प्रेरण देना; मोच खाना–भ्रष्ट होना; कतरे से दरिया करना–छोटा सा सहारा पाकर उसका विस्तार करना; ढाक के वही तीन पात–सदा एक-सी स्थिति।

**१२. जि. जे. 'हरिजीत'**

अपने विद्यार्थी जीवन में ही लिखना आरंभ करके आजकल 'हरिजीत' जी हिन्दी नाट्य क्षेत्र में अपने लिए विशिष्ट स्थान प्राप्त कर रहे हैं। इनके 'रंगायन' (एकांकी संग्रह) और 'हुमायूं' (ऐतिहासिक नाटक) की विद्वान-समालोचकों ने भूरि भूरि प्रशंसा की है। इनके सभी एकांकी अभिनेय हैं। संवाद सशक्त एवं प्रभावशाली है। इनकी रचनाएँ भारत सरकार और हरियाणा सरकार से पुरस्कृत हुई हैं।

"'मंदिर की नींव' में एक फ़ौजी चौकी के कमरे का दृश्यबंध है, इस दृश्यबंध पर भारतीय सैनिकों की जाँबाजी, दिलेरी और स्वदेश-प्रेम तथा कर्तव्य परायणता का उसी भाँति वर्णन प्रस्तुत किया गया है जैसे ईश्वर के किसी महान भक्त का प्रस्तुत किया जाता है। इन भारतीय सैनिकों के त्याग, तपस्या, कर्तव्य-बोध एवं स्वदेश-प्रेम के आदर्श के चलते उस फ़ौजी चौकी के उस कमरे का महत्व किसी मंदिर से कम सिद्ध नहीं होता क्योंकि वहाँ हिंसा के वातावरण में भी मानवीय पवित्र भावनाओं के दर्शन होते हैं। सैनिकों के अमर बलिदान से हर चौकी मंदिर बन गया है।" (–नर नारायण राय)

* * *

संगदिल–पत्थर का हृदय; बेशकीमत–अमूल्य; तैनात–किसी काम के लिए नियुक्त किया हुआ; हमदर्दी–सहानुभूति; तसल्ली–सांत्वना; मजमूननवीसी–लेखन कार्य; हकीकत–वास्तविकता; निहायत–बहुत; इशाअत–प्रचार; ल्हासा–तिब्बत की राजधानी; खैरअंदेशी–शुभचिंतन; तादाद–संख्या; कुर्बानी–आत्मत्याग; नैपसैक (Knapsack) – चमड़े या टाट का बैग जो पीठ पर बंधा